राष्ट्रिय चिन्तन और प्रशिक्षण



• लेखक •

डॉ. विन्ध्येश्वर पाण्डेय
विद्यावारिधि न्याय-व्याकरणाचार्य
भू. पू. प्राचार्य : सं. म. वि. झलोखर, हमीरपुर

प्रकाशक : डॉ. विन्ध्येश्वर पाण्डेय, रंगमन्दिर वृन्दावन

संस्करण : प्रथम, ५०० प्रतियाँ

तिथि : मेष संक्रान्ति १३ अप्रेल

मुद्रण-संयोजन :
श्रीहरिनाम प्रेस, हरिनाम पथ, लोई बाजार, वृन्दावन - 281121
दूरभाष : 0565-2442415

विषय-सूची

प्रस्तावना

भारतदेश को कृत्रिम विद्वेष की आग में सभी दिशाओं से झोंकते रहने के लगातार क्रूर प्रयत्न वे लोग कर रहे हैं जिन्हें हम मानवता के नाते मित्र बनाने का दिवास्वप्न चिरकाल से देख रहे हैं। हम उनका हृदय अपने जैसा ही माना करते हैं। वे अनेक फर्जी नाम और दिखावटी रूप लिए अपने और पराये शासनतन्त्र को नकारते और उनकी पकड़ से बाहर रहते हुए केवल हिंसा के बल पर अपना स्वतन्त्र अस्तित्व बनाये रहते हैं। उनका वर्चस्व बढ़ता जाता है शासन की शिथिलता, देशव्यापी अनैतिकता और जनसाधारण की बेवशी के साथ खुदगर्जी से। हमें शासन में सुधार लाना होगा, अनैतिकता को दूर भगाना होगा और जनसाधारण के सोच में उदारता की तब्दीली लानी होगी कुछ ऐसी ट्रेनिंग से जिसकी तुलना में आतंकियों द्वारा युगों से चोरी छिपे चलायी जा रही ट्रेनिंग विफल हो जाये। तब समाज में आतंक को मुँह छिपाने की जगह नहीं मिलेगी और वह समुद्र के किनारे रहता हुआ जल-जन्तुओं के सहारे जिया करेगा।

देश के राजकीय संस्थानों द्वारा, व्यक्तिगत संस्थानों द्वारा और आतंकियों द्वारा भी सैकड़ों प्रकार के प्रशिक्षण चलाये जाते हैं। सब में कार्य-कुशलता ही सिखलायी जाती है। हमें अपने राष्ट्र की रक्षा की उस कुशलता का प्रशिक्षण देना है जिसके होने से छिपे दुश्मनों की जारी सारी घातक योजनायें तार-तार हो जायें।

ऐसा करने के लिए हमें बैठ कर तत्परता और निष्ठा के साथ देर तक सफल निर्णयपर्यन्त सोचना होगा, संगठन बनाना होगा, धन लगाना होगा, पूर्ण फल पर्यन्त प्रयत्न जारी रखना होगा। शत्रुओं से केवल बचने का नहीं बल्कि उन्हें सदा के लिए दफना देने का भी उत्साहपूर्ण प्रयत्न करना होगा। प्रयत्न की विधाओं का दिग्दर्शन यहाँ प्रस्तुत है।

राष्ट्रिय चिन्तन और प्रशिक्षण

शिक्षा तत्त्व

शिक्षा की चार अवस्थायें होती हैं; कुशिक्षा, अशिक्षा, शिक्षा और सुशिक्षा। सभी प्राणियों में कोई एक अवस्था रहती है। किसी भी काम क्रोध की दशा में जीवन में प्रवेश पा चुका नशेबाजी चोरी हिंसा दम्भ पाखण्ड आदि कोई भी दुर्व्यसन कुशिक्षा कहा जाता है। बहुत सी राजनीतिक मान्यतायें भी समाज विरोधी होने से कुशिक्षा बन जाती हैं। फिदायीन इनसान कुशिक्षा का अच्छा नमूना होता है। बढ़ी हुई कामवासना और जल्दी आने वाला क्रोध कुशिक्षा ही है। कुशिक्षा से दूसरों की हानि सुनिश्चित नहीं होती किन्तु अपनी हानि अवश्य होती है। अपने जीवन में आयी कुशिक्षा से अपने को उबारने का सतत प्रयास व्यक्तित्व के विकास का उपक्रम होता है। योग्यता के अभाव में साधनों के अभाव में, या किसी विघ्न के कारण अपेक्षित शिक्षा न मिल पाना अशिक्षा कहा जाता है। इससे प्रगति रुकती है। भाग्यहीन लोग अपेक्षित शिक्षा से विमुख रहकर निठल्ले रह जाते हैं। जन्मजात विमुखता महान् विघ्न होता है। अशिक्षित माता पिता की सन्तान प्रायः ऐसी होती है। गाड़ी का चालक शिक्षित होता है, क्योंकि वह गाड़ी अच्छी चलाता है किन्तु वह शराब पीता है, दूसरे भी दुर्व्यसन उसमें पाये जाते हैं इससे उसमें कुशिक्षा भी होती है। ड्राइवर की पहचान कुशिक्षा से भी होती है। शिक्षा वह होती है जो दूसरी शिक्षाओं की तरह कुशिक्षाओं का भी सहन करती है। ड्राइवर क्रिकेट का खिलाड़ी भी हो सकता है। वह बन्दूक का निशाना भी साधता होगा। पेशे से वह ड्राइवर है किन्तु शौक से वह खिलाड़ी और शिकारी भी है। खेल और शिकार दुर्व्यसन तो हैं किन्तु शराब की तरह निन्दित नहीं हैं। शराब से बुद्धि मारी जाती है, उत्साह शक्ति नष्ट होती है, विवेक साथ छोड़ देता है जबकि खेल

और निशानेबाजी से बुद्धि तेज होती है, क्षिप्रकारिता आती है। जातीय शिक्षा जन्मजात होती है, अन्य शिक्षायें समुचित अभ्यास से होती हैं। शिक्षा ही मानव को पशुता से अलग करती है। किसी विषय का सर्वांगपूर्ण ज्ञान सुशिक्षा कहा जाता है। वास्तव सुशिक्षा वह होती है जो कुशिक्षा का सहन नहीं करती। परीक्षा में नकल भारी कुशिक्षा है। विद्या में चोरी ज्ञान के अभाव में भी ज्ञानवान् कहलाने का शौक है और वह है ज्ञान के स्थान पर अज्ञान की स्थापना का पापमय प्रयत्न। जिसने ऐसा प्रयत्न एक बार भी किया वह व्यक्ति ज्ञान के मार्ग से उत्तरोत्तर हटता जायेगा और अज्ञान के गर्त में बन्धुओं के साथ गिरेगा। आज की दुनियाँ शिक्षा का फल प्रमाणपत्र और उसका फल नौकरी और उसका फल रिश्वत और ऐशमौज मान रही है। इसी से आज का मानव अपने को उच्चस्तरीय पशु मानने लगा है। गलत मान्यता का परिणाम घातक होता है। जिस देश में भ्रान्तियाँ बढ़ती हैं उसका विनाश हो जाता है। भारत का नेता वर्ग शुरू से शिक्षा की उपेक्षा करता आया है, यह बात छिपी नहीं है। इसी से अब यह देश जनसंख्या वृद्धि के साथ ही मौत का और पराधीनता का शिकार बनता जा रहा है। अभी देश के किसी भी कोने में आपसी न तो विश्वास है न शान्ति है न शासन से सन्तुष्टि है। भला, जिस देश ने ज्ञान के स्थान पर अज्ञान का वरण कर लिया वह कौन सी दुर्गति से बच सकता है। यह कम आश्चर्य की बात नहीं है कि परीक्षा में किसी भी सही गलत उपाय से ३३ः अंक पाने वाला छात्र उत्तीर्ण मान लिया जाता है। उसका ज्ञान ३३ः प्रतिशत मिला तब अज्ञान ६७ः प्रतिशत होगा ही। जिसका किसी विषय में अज्ञान ज्यादा सिद्ध हो रहा है वह यदि उत्तीर्ण है तो निश्चित हुआ कि परीक्षा संस्थान ज्ञान के नाम मात्र प्रदर्शन से ही सन्तुष्ट है। आज देश के सारे परीक्षासंस्थान भी अज्ञानियों या अज्ञान के ठेकेदारों के इशारे पर ही चलने को बाध्य हैं। यदि अधिकारी आदर्श का पक्ष लेते देखे जाते हैं तो पदों से तत्काल अलग कर दिये जाते हैं। जब देश परतन्त्र था तब ऐसा नहीं था, स्वतन्त्र होकर बिगड़ गया है। पिछले कम से कम ५० वर्षों से चल रहे इस बिगाड़ का नतीजा पूरे भारतीय समाज पर पड़ा है। आज राजनीतिक किसी भी संगठन का छोटा बड़ा कोई भी सदस्य राष्ट्र की सुरक्षा और विकास का निर्विवाद या अकाट्य समग्र चिन्तन प्रस्तुत करने की स्थिति में

उपलब्ध नहीं है। दूसरों की निन्दा और अपना झूठा दावा पेश करते रहना मानो राजनीति का एक सर्वोपरि कर्तव्य बन गया है।

कतिपय लोग अपनी मिथ्या महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति के लिये देश और समाज की सेवा के नाम पर फर्जी नाम रूप लेकर आगे आते हैं और जब तक बन पाता है तब तक अपनी कुटिल नीति की गाड़ी घसीट लेते हैं बाद में मुँह ढककर सो लेते हैं। पहले पाकिस्तान नहीं देना था, बाद में मैत्री के भरोसे दे दिया। वह मैत्री न हुई न हो पायेगी। क्योंकि बिगाड़ का और मैत्री का आधार जो कुछ है उसे दोनों पक्ष झुठलाया ही करते हैं। उस पर गम्भीरता से तटस्थ भाव से सोचने की परिस्थिति आजतक किसी पक्ष की नहीं बन पाती। इसका मूलकारण है वह अनिरूपित धर्मनिरपेक्षता जिसके अपनाने से जीवन की महत्त्वपूर्ण बहुत सी बातें स्वयं छूट जाती हैं और उलझनें आकर जम जाती हैं। इस पर विशद चिन्तन अन्यत्र है यहाँ इतना ही कहना अपेक्षित है कि हमारे नेताओं मे कोई ऐसा क्यों नहीं होता जो जीवन को सवांरने वाले भारतीय दर्शनों धर्मों और कलाओं पर श्रद्धावान् हो। इसका उत्तर यही है कि आजादी के पहले हम कुशिक्षित थे और अब अशिक्षित हैं तो शीलवान् नेता कहाँ से आये और देश में शास्त्रनिष्ठ स्नातक क्यों उपलब्ध हों। शास्त्रनिष्ठा से अध्यात्म निष्ठा आती है। अध यात्म निष्ठा के अधीन ही धर्म नीति और राजनीति बसती है। राजनीति को धर्म से अलग रखने की बात केवल अशिक्षा से उठती है। उक्त बात चिरकाल से अनेक शीर्ष नेताओं के मुँह से सुनी जा रही है। बड़ों के मुँह में जाकर भी तम्बाकू दुर्गन्ध घातक ही होता है। धर्म और नीति को लक्षित और परिभाषित किये बिना साथ रखने या अलग रखने की बात सदा ही बेमानी है। लक्षण और परिभाषा विद्या करती है। देश के प्रथम प्रधानमंत्री ने विद्या का पूरा अनादर किया, तब से आज तक अनादर का सिलसिला जारी है। शीर्ष नेता वही बोलते हैं जिससे मूढ़ जनता का वोट सुरक्षित रहे। रोटी कपड़ा और मकान से ऊपर धर्म, नीति, ज्ञान, विज्ञान, शील, सदाचार की चर्चा होने से भगवा करण का भूत पकड़ कर खा लेता है। यद्यपि आज तक ऐसा नहीं हुआ है पर हौवा का खतरा तो बना ही रहता है। क्या कारण है कि आज देश के कोने कोने में आतंकियों के संगठन पनप रहे हैं और ज्ञान विज्ञान नीति धर्म सदाचार शिष्टाचार का कहीं कोई संगठन

देखने को नहीं मिलता। कारण एक ही है "यथा राजा तथा प्रजा।" प्रजातन्त्र में इसे पलटकर पढ़ना होगा कि "यथा प्रजा तथा राजा"। बहुसंख्य समाज में अज्ञान की प्रधानता होती है। उस समाज के द्वारा जो शासन चलेगा यह कभी भी वाञ्छित परिणाम नहीं दे पायेगा। राजतन्त्र में भी प्रजा की सुरक्षा राष्ट्रिय बोध पर ही निर्भर होती है। प्रजातन्त्र में राष्ट्रिय बोध की आवश्यकता बढ़ जाती है। वास्तव राष्ट्रिय बोध में म्लेच्छों को भगवा की बदबू मिलती है। उनहें तो लगातार गोमांस की खुशबू चाहिये। वे यह कभी नहीं देख पाते कि कहीं भी यदि गोमांस भक्षी खुशहाल हैं तो बहुतों की गौओं (हितवाणियों) की लाश पर ही हैं। वास्तव खुशहाल वह होता है जो स्वयं खुश रहता हुआ दूसरों को भी खुश रखे। जिन्हें अपनी संस्औति ईसा से पहले की मिली ही नहीं वे पहले सभ्य हों तब संस्औति पायें तब विश्व कल्याण की सोचें। शुरू से ही लूटमार छीनाझपटी में जीने वालों के पास समाजहित का कौन उपाय होगा। उनमें राष्ट्रियता भी क्या होगी। वे यदि हिंसा दम्भ छलछद्ममय धन कहीं के गरीवों को बांटते हैं तो वह उनका उपकार नहीं होगा। पाप धन से पाप बुद्धि और पापकर्म होते हैं। पाप धन से जीवित रहना और मर जाना तुल्य नहीं है। मरने वाला दुबारा जन्म लेकर पुरुषार्थ करेगा जबकि जीने वाला पाप में ही लिप्त रहने से उज्जीवन से दूर ही रहेगा। इस प्रकार अर्थ शुद्धि की प्रेरणा जहां से मिलती हो वही वास्तव शिक्षा संस्थान है। जहाँ नकल से प्रमाण-पत्र मिलता हो वह कसाईखाना हो सकता है, क्योंकि वहाँ आत्मा को उज्जीवन का मार्ग तो मिलता नहीं बल्कि वहाँ का प्रमाण पत्र रिश्वत के पंख से उड़कर ऐसे ऊँचे पद पर बैठता है जहाँ से गरीबों की दिनरात रिश्वती हिंसा की सुविधा या विवशता बनी रहती है और आत्मा का चिरनिरय नित्य सुरक्षित होता है। यदि हम सही पावर वाला चश्मा लगाकर देखें तो धर्मनिरपेक्ष भारत शासन के अधीन आज कोई शिक्षा संस्थान कुशिक्षा देने वाला नहीं मिलेगा। फिर भी देश में साक्षरता अभियान चलता ही रहेगा। वोट जो बटोरना है, नहीं तो कुर्सी नहीं मिलेगी। कुर्सी के अभाव में कुधन और उसके अभाव में वह स्थायी दुबुर्द्धि कहाँ से आयेगी जिससे राष्ट्र में सर्वत्र धर्म के लक्षणों का लोप किया जा सके। राम जन्मभूमि मन्दिर बनेगा, शीघ बनेगा, बस न्यायालय के फैसले की देर है। राधारानी

भी नाचेगी, अवश्य नाचेगी, शीघ्र नाचेगी, बस आंखों में नौ मन काजल लगने की देर है। देश स्वतन्त्र है, हर तरह के झूठ फरेब करने के लिये, अपना स्वरूप मिटा डालने के लिये, अज्ञान को सादर शिरोधार्य करके ज्ञान से सदा सदा को हाथ धो डालने के लिये। इसलिये कि अब की बार की गुलामी दस हजार साल से कम न चले। अपनायी गयी धर्म निरपेक्षता, आजमायी जा रही अनैतिकता और धीरे-धीरे चारों कोनों में श्रद्धा से पधरायी जा रही है आतंकी हिंसा उस प्यारा पुरानी गुलामी के अग्रदूत हैं। जो लोग उपर्युक्त वचनों को भावुकतापूर्ण अतिशयोक्ति मानते हों वे इतना तो समझ ही सकते हैं कि जिस किसी बहुसंख्यक परिवार के २० प्र. श. सदस्य पड़ोसी विरोधी परिवार से मिले हों एवम् १५ प्र. श. सदस्य दूर के दूसरे विरोधियों से मिले हों और ४० प्र. श. सदस्य विवेक शून्य हों तो शेष २५ प्र. श. सदस्य यदि परिवार का हित सोचें, चाहें और प्रयत्नशील हों तो भी परिवार में बिखराव और विनाश हो ही जायेगा। रक्षा तो तभी हो सकती है जब बहुसंख्यक सदस्यों में सुशिक्षामूलक सुदृढ़ सामञ्जस्य हो। यही नियम किसी देश की प्रजा में भी लागू होता है।

भारत की वर्तमान जनता के सभी वर्गों में जो भावनायें हैं वे कुसंग और कुशिक्षा से बनी हैं और देशहित, राष्ट्रियता की दृष्टि से आमूल परिवर्तन के लायक हैं। इसमें कुसंस्कारों का प्रतिशत उपर्युक्त परिवार दृष्टान्त के अनुरूप ही है। अवश्य ही कुछ संगठन चिरकाल से बदलाव के प्रयत्नों में लगे हैं किन्तु उनकी मूलभूत नीति अधूरी है। नीति का आधारभूत उनका चिन्तन अधूरा था जिससे उन्होंने आवश्यक बहुत से तत्त्वों को छोड़कर अपनी नयी नीति बनायी। राजनीति के महत्वपूर्ण अंगों को काटकर अलग करना ही उन्हें अच्छा लगा। इससे उनकी लंगड़ी नीति प्रगति नहीं कर पा रही है बल्कि राष्ट्र में अनर्थ बढ़ते ही जा रहे हैं। वे पुनरीक्षण को भी तैयार नहीं है। उनके घर में पुनरीक्षण योग्य कोई सदस्य जन्म नहीं ले रहा। उन्हें अपनी मन्थर प्रगति से इतनी सन्तुष्टि है कि कई गुना बढ़ती विऔति उन्हें खलती नहीं। वेदों के अर्थ तो वे अपनी प्रज्ञा से परिस्थिति देखकर बदल लेंगे किन्तु अपने आदि पुरुष की कल्पित नीति जो वे समझ रहे हैं उसमें कुछ जोड़ तोड़ नहीं सोच सकते। गलत अटकाव भटकाव की ही भूमिका होता है। निकट अतीत से जारी आतंकी झंझा से

बचाव चिर अतीत में सामान्य रूप से सोचा गया था। उस सोच को समझने परखने और सार्वजनिक जीवन में विधिवत् उतारने की आवश्यकता है। यहाँ इस विषय पर व्यापक प्रकाश डाला गया है। राष्ट्रहितैषी निष्पक्ष प्रेक्षक इसमें अपने भी विचार जोड़कर इसकी उपयोगिता बढ़ा सकते हैं। यह कार्य वे ही कर पायेंगे जो भारतीय राजनीति अर्थनीति और धर्मनीति में पारंगत हों और सामञ्जस्य भी देख रहे हों।

जैसै–प्रभु ने सब जीवों को बना दिया सर्वांगपूर्ण,
जिससे वे पुरुषार्थ लाभ में सफल हो रहे सदा तूर्ण।
ऐसे अविकल राजनीति हम, सब पक्षों से रच लेंगे
तब सब राष्ट्र दूर दूर के, भी हमसे प्रज्ञा लेंगे।।

आतंकी संस्कृति : कारण और वारण

आज सारे विश्व में आतंकी संगठन फैले हुए हैं। सबके अलग अलग नाम हैं, उद्देश्य भी अलग अलग हैं। ये बीसवीं इक्कीसवीं शताब्दी की खास पहचान बन चुके हैं। इन्हें अपने कथित उद्देश्य में थोड़ी भी सफलता नहीं मिलती है, ये चाहते भी नहीं हैं। जब सफलता निकट होती है तो उद्देश्य का मुहँ सुरसा की तरह फैला लेते हैं। इनकी सोच है कि जैसे कला कला के लिये है वैसे ही आतंक आतंक के लिये है। नाम रूप और उद्देश्य तो केवल व्यावहारिक होते हैं, परमार्थ से इनका कोई लगाव नहीं होता। परमार्थ तो सदा ही निरुपाधि अचिन्त्य एवं स्व संवेद्य होता है। आतंकजगत् का अधिष्ठानभूत परमार्थ तत्त्व अपने को ब्रह्मतत्त्व से थोड़ा भी कम नहीं मानता।

ये सब मिथ्या हैं

सारे आतंकी संगठन मिथ्या हैं। मिथ्या के सारे लक्षण इनमें भरपूर मिलते हैं, न इनका नाम से लगाव है, न रूप से न किसी कथित उद्देश्य से अकथित उद्देश्य से लगाव हो सकता है, वह तो उनका अचिन्त्य अधिष्ठान तत्त्व है जिसे समझना ही मुश्किल है, पाना तो बहुत दूर है। इनका जन्म सत्य पर परदा पड़ने से होता है, कुछ लोग इन्हें ही सत्य का पर्दा मानते हैं। अभी यह तय नहीं हो पाया है कि सत्य इन्हें स्वयं ही ओढ़े

है या ये ही सत्य को ढक रहे हैं। हिन्दी में कहना होगा कि या तो ये शासक वर्ग के प्रमाद से होते हैं या ये सातवें आसमान से अचानक उतर कर शासक वर्ग को स्वयं नशा खिला देते हैं। इन्हें शासकवर्ग प्रतिबंधित का पुछल्ला बान्धकर व्यावहारिक मिथ्या अर्थों में सबसे ऊपर रखता है। इससे इन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

निर्सग ही इन्हें बनाता है

जंगली और पालतू बहुत से पशु पक्षी अकारण हिंसा परायण पाये जाते हैं। वांछित अपराध के लिये ये संगठित भी होते हैं। ये मानव योनि में भी आते हैं और अच्छाइयों के विरुद्ध मोर्चा बनाते हैं। मानवीय बहुत सी जातियों के लम्बे इतिहास में संघ बद्ध हिंसा पायी जाती है। हिंसा के पीछे प्रतिक्रिया, आत्मरक्षा या कुछ पाने की भावना काम करती है। वस्तुतः पापमयी ईर्ष्या बहाने ढूँढ़ती रहती है। मानव को मानव के प्रति आत्मीयता सहानुभूति, दया, उपकार, स्नेह, सौहार्द आदि उत्तम भाव सुऔतों के फलभूत सत्त्वगुण की वृद्धि से होते हैं और पाप कर्मों के फलभूत तमोगुण की वृद्धि से परायापन, ईर्ष्या, क्रूरता, अपकार, वैर और दोषदृष्टि हुआ करती है।

सात्त्विक लोग धर्मशील होते हैं, वे ही रक्षा और विकास का सक्रिय चिन्तन कर पाते हैं इसके विपरीत तमोगुणी लोग सदा विनाश सोचते और करते रहते हैं। वे अपनी भी रक्षा और विकास नहीं कर सकते। बैल चारा खाता तो है किन्तु चारे की रक्षा करना नहीं जानता। बिल्ली अपनी सन्तान को प्रसव के बाद तो खाती है, बाद में भी रोगी समझने पर मारकर खा लेती है वह और किसकी रक्षा करेगी।

अपराधी प्रऔति के लोग समाज में रहना कम पंसन्द करते हैं। सांप बाघ अकेले विचरण करते हैं भेड़िये मानव का शिकार करने के लिये मिलकर मोर्चा बन्दी भी करते पाये जाते हैं। मानवों में भी भेड़िये होते हैं जो जंगलों में छिपते हुए संघबद्ध होकर कुछ मानवों को मारकर चले जाते हैं। हिंसा के लिये छिपे खिलाड़ी पुरस्कार और प्रशिक्षण से उन्हें प्रोत्साहित करते हैं। अपनी सीमित बुद्धि और वाणी से वे अपनी पापमय गति विधियों को सही भी ठहराते रहते हैं। धर्मनिरपेक्ष मानव उनकी बुद्धि और

वाणी को चाव से सुनता और समाधान ढूंढने का विफल प्रयास करता रहता है। अपनी धर्मनिरपेक्षता से ही उनका जन्म वह नहीं सोच पाता।

बोट की राजनीति और प्रजातन्त्र

राजतन्त्र के दोष प्रजातन्त्र में नहीं होते, प्रजातन्त्र के दोष राजतन्त्र में नहीं होते। प्रजातन्त्रीय राजतन्त्र और राजतन्त्रीय प्रजातन्त्र भी देखे सुने जाते हैं, उनमें दोनों तन्त्रों के दोष कमवेशी होते हैं। उनका अंगागिभाव दोषों का द्वार बनता है। सर्वथा निर्दोष वह शासन होता है जो वास्तव राजधर्म से नियन्त्रित होता है। उसमें राजा की या किसी सर्वोच्च प्रतिनिधि की महत्त्वाकांक्षा प्रभावी नहीं होता। वहां तो वह राजधर्म प्रधान होता है जो अनादि काल से निर्दोष शुद्ध और जाँचा परखा है। पापशील प्रजा उस राजधर्म को पकड़ नहीं पाती और बुराइयों की गलियों में भटकती हुई क्लेश भोगती रहती है।

प्रजातन्त्र की सोची गयी सारी अच्दाइयाँ इसलिये दुर्लभ हो जाती हैं कि इसमें वोट पाने के लिये प्रजा की दुर्भावनाओं को सहलाया जाता है। जातियाँ, वर्ग, क्षेत्र जो गलत सोच लिये होते हैं उन प्रत्येक को सही ठहराते हुए उन गलतियों के ही विकास का आश्वासन दिया और निभाया जाता है। नकल अध्यादेश की समाप्ति इसका एक अच्छा नमूना है। ऐसे सैकड़ों उदाहरण इकटठे हो सकते हैं। कोई प्रत्याशी यदि वादा करे कि मैं समाज में फैली गलतफहमियों को दूर करूंगा तो उसे कोई भी व्यक्ति वोट नहीं देगा। सबको अपनी गलती की सुरक्षा की चिन्ता रहती है। अपनी गलती कोई नहीं मानता, सुधार की तो बात ही क्या होगी। आज देश में बहुत से माफिया गिरोह, दस्युगिरोह, चोरगिरोह और व्यापक रिश्वती गिरोह को खास खास नेताओं का संरक्ष्ण प्राप्त है। देश के अधिकांश पुलिस स्टेशन अपराधों के स्टेशन बन चुके हैं। आज की पुलिस को अपराधियों का विश्वास प्राप्त रहता है न कि पीड़ितों का। उसी पीड़ित की सुनवाई पुलिस करती है जो प्रचुर धन दे सके और असंरक्षित अपराधी से पीड़ित हो। रिश्वत का सेयर बहुत ऊपर तक जाता है इससे इसका विरोध कहीं से भी सफल नहीं हो पाता और रिश्वत देने वाले या अक्षम लोग सदा ही पीसे जाते हैं। संरक्षण प्राप्त सारे गिरोह वोट के ठेकेदार होते हैं। इससे यह

मानना पड़ता है कि सारे प्रत्याशियों को अधिकांश गन्दे माध्यमों से, गन्दे तरीकों से वह वोट मिलते हैं जो जनसाधारण की सहमति के बिना ही बनते हैं। अपराधी वर्ग अपराध से अर्जित धन भी नेताओं को देता रहता है जिसके एवज में उनसे उन्हें दण्डों से बचाव का जोगाड़ बनता है। यह स्थिति समाज के किसी कोने में नहीं बल्कि पूरे विश्व में बनी हुई है। अनैतिकता की क्षमता शासन सत्ता के योग के योग से सबके लिये सदा विश्वनीय होती है।

आतंक का आधार

समाज की यह स्थिति ही आतंक का आधार बनती है शासन पर, न्यायपालिका पर, पुलिस विभाग पर और बड़े कहलाने वाले अन्य लोगों पर भी जनता का भरोसा न रह जाने से वह आतंकी गतिविधियों का समर्थन करने के लिये बाध्य रहती है। आतंकियों के पास वह कला होती है जिससे ९० प्र. श. लोग इशारे पर चलते हैं। दस प्रतिशत बड़े लोग जो कि नीचे के तबको की ईर्ष्या के पात्र होते हैं उन्हें वे समाज सुधार के नाम पर पददलित या पीड़ित करते हैं या मार डालते हैं रिश्वत की भूखी, डरपोक पुलिस को वे सदा ही अपने चंगुल में रखते हैं। निष्ठावान् पुलिस कर्मियों को मार डालते हैं। आतकियों का अन्तरराष्ट्रिय गठबन्धन चल रहा है। ये सरकारी पदाधिकारियों से दूनी तत्परता ईमान और लगन से काम करते हैं। इनके पास उच्चस्तरीय अस्त्रशस्त्रों एवं प्रचुरधन के अतिरिक्त विभीषिका नाम एक वह प्रभावी अस्त्र होता है जो किसी सरकार के पास नहीं होता अब सरकारों को भी यह हासिल करना होगा। शिकार खेलने को जंगल में घूम रहा व्यक्ति आराम नहीं सोचता, वह तो अधिक से अधिक शिकार करता है। ऐसे ही ये दिन रात अपना शिकार शौक से करते रहते हैं। शिकार की कीमत इन्हें मिलती है। मौत पर अच्छा पुरस्कार सन्तान को मिलता है।

यह एक व्यसन बन चुका है

आज के युग में आतंकवाद एक व्यसन बन चुका है। तम्बाकू के पैकेट की तरह गोला बारुद बहुतायत से बनते और वितरित होते रहते हैं।

सरकारी तन्त्र इसे रोकने में वैसे ही विफल रहता है जैसे और बुराइयों को रोकने में। व्यसन वह होता है जो अफीम की तरह विना कुछ लाभ पहुँचाये रहता है और जिन्दगी के साथ ही जाता है। व्यसनी जन अशिक्षित होने से बिना कुछ हानि लाभ समझे अपने व्यसन पर डटे रहते हैं। आतंक का प्रमुख आधार अशिक्षा होता है। नकली शिक्षा अशिक्षा से अधिक घातक होती हे। वह भी अभी विश्व व्यापी बनी हुई है। अनैतिकता ने वर्ग भेद की खाई बहुत चौड़ी कर रखी है। इससे ईर्ष्या द्वेष की मात्रा बहुत बढ़ी है। लोग एक दूसरे का विनाश ही देखना चाहते हैं। रचनात्मक भावना सबकी दब चुकी है। इसी से आतंकी गतिविधियाँ परिणाम पर्यन्त अदृश्य रहती हैं।

वचाव का उपाय सामाजिक भर्त्सना

समाज की किसी भी बुराई का वारण सामाजिक भर्त्सना से शुरु होता है। अधिक सन्तान और दहेज अब अपराध के दर्जे में आ गये हैं। लोग इनसे बचने लगे हैं। घात लगाकर निरपराधों की हिंसा कभी भी अच्दा काम नहीं है, न इसका आज तक कहीं कोई अच्छा परिणाम आया है। जो लोग अपने धन बल और कूटनीतिक शक्तियों से इसे चालू रखे हैं उन्हें भी कोई वास्तव शुभ परिणाम नहीं मिलने वाला है। केवल दुर्बुद्धि से वे इस दुर्व्यसन पाले हैं। ऐतिहासिक को भीषण हत्यारे अपने समय सुखी नहीं थे, बाद से समाज उन पर थूकता ही जा रहा है। अनैतिक हिंसा से धर्मप्रचार भी न हुआ है न हो रहा है, आंकड़े गलत होते हैं। डेढ़ दो हजार वर्षो तक भ्रान्ति पलती है, आगे सबकी आँखें खुलती हैं अनैतिक हिंसा से समाज सुधार भी नहीं होता। मरे लोग सुधरते नहीं, जीवित लोग जो कुछ सीख पाते हैं वह मौत की तुलना मं नगण्य होता है। भय के वातावरण में हुई अव्यावहारिक सीख भय हटते ही छूट जाती है। मनुष्य में ईर्ष्या तो होती है किन्तु वह अपने हाथ से हत्या पसन्द नहीं करता। दिखाई पड़ने वाली हिंसा आरोपित उपाधियों से होती हैं। हिंसा की भर्त्सना हो रही है। सर्वत्र मांसभक्षियों की तादाद घट रही है फिर भी उनका अन्त नहीं होता है। अनैतिक मानवहिंसा केवल दुर्व्यसन है जो अज्ञानजनित स्वाभाविक या औत्रिम कोप से होती है। बेगुनाह रोगी स्त्री बाल वृद्धों को और तीर्थयात्रियों को डालना सबसे बड़ी अनैतिक हिंसा है। इसे किसी धर्म घेर

कर मार निरपेक्ष सरकार के लिये चुनौती भी नहीं कहा जा सकता। तो यह केवल पापमयी वद्धमूल ईर्ष्या का परिणाम माना जा सकता है जिससे पापी लोग राह चलते फलदार नये पेड़ उखाड़ घोंसला करते हैं या किसी चिड़िया का अण्डों वाला उजाड़ देते हैं और टोकने पर गुर्राते हैं। ऐसे लोगों को देखते ही गोली मार देना समाज हित का पुण्यकार्य हो सकता है। ऐसे लोग सुधरने के बजाय उत्तरोत्तर विगड़ते ही देखे जाते हैं। भर्त्सना की ध्वनि बुलन्द की जाये।

दूसरा उपाय संस्कारमयी शिक्षा है।

भारत देश की शिक्षा मुस्लिम पीरियड से ही बिगड़ी है। अंग्रेजों की चलायी शिक्षा केवल क्लर्क बनाने वाली है। वर्तमान संस्औत पाठय क्रम भी अंग्रेजों का ही चलाया है इनकी परीक्षा प्रणाली सबसे रद्दी है। जो लोग इसे अच्छी कहते हों वे किसी स्वार्थमय अज्ञान से प्रेरित होकर प्रलाप करते होंगे। स्वतन्त्रता के बाद देश की शिक्षा एक दम नष्ट हो चुनी है। मायावती ने रामजन्मभूमि के स्थान पर पेशाब खाना बनाने की शिफारिश की है। वह उसकी बुद्धि वर्तमान कुशिक्षा का परिणाम है। जहां से ऐसी प्रेरणायें मिलती हैं वह संस्थायें पेशावा खाने से अधिक महत्त्व रखती हैं। क्योंकि वहाँ गन्दगी फैलाने के लिये तगड़ी फीस देनी पड़ती है। दलितों की फीस माफ होती होगी। उनकी दृष्टि में शिक्षाकक्षा और मूत्रकक्षा तुल्य हो सकती है।

वास्तव में आज के छात्र जो शिष्टाचार से दूर केवल नकल सेपरीक्षायें पास कर रहे हैं और रिश्वत देकर प्राइमरी के टीचर बन रहे हैं उनके ही लिये देश आजाद हुआ है। क्योंकि उन्हें नौकरी मिलने के बाद से वेतन पाने के लिये शिक्षण के बदले दूसरी ही डयूटियाँ दी जाती हैं, इससे देश के नन्हें मुन्नों को कुसंस्कारी बनने का भरपूर मौका मिलता है। सारी अनैतिकताओं से प्रफुल्लित आतंकवाद और उग्रवाद की वुनियाद स्वन्त्रभारत के अंग्रेजी दिमाग वाले पदाधिकारी नेता ही बनाते हैं। इनका जो अंग्रेजी पहनावा होता है वह भारतीय धर्म की भाषा में नग्नता है। भावनाओं में वे नग्न होते हैं। दिन रात रिश्वत के स्रोत बनाते रहते हैं। यह दायित्व उन्हें ऊपर से सौंपा गया होता है। ऊपर वालों का धरती से लगाव नहीं होता वे ऊपर से ही आरोपित होते हैं।

कुछ शिक्षायें संस्थाऐं संस्कारों देने के प्रयास करती हैं। उन्हें भी कुसंस्कारी कुशिक्षित स्नातकों से ही काम लेना पड़ता है। उनके पास शिक्षकों में अनुशासन कायम करने के उपाय तो होते हैं किन्तु शिक्षणीय विषयों में पारंगत बनाने का कोई साधन उन्हें नहीं मिलता। शिक्षा का स्तर काफी घट चुका है। इससे कहीं भी योग्य शिक्षक मिलना कठिन हो गया है। इस कमी को दूर करने के उपाय उच्चस्तरीय लोग सोच सकते हैं। मुश्किल तो यह है कि बहुत कम ही लोग स्थिति से अवगत होते हैं। जो कुछ समझते भी हैं वे अपना दायित्व नहीं समझते और न उनमें संगठन की शक्ति होती है। संगठित योजना नहीं बनने से आतंक सारे विश्व को निगल जायेगा। और उनसे निपटने के वादे आकाश के गुब्वारे बनते रहेंगे। दस प्रतिशत लोग भी यदि प्रमाद छोड़ कर कर्त्तव्यनिष्ठ हों तो राष्ट्र का रूप बहुत सुघर सकता है। संस्कारमयी सुदृढ़ शिक्षा के बिना किसी भी राष्ट्र का अस्तित्व खतरे में ही रहता है।

तीन नयी योजनाएँ चालू हों

शिक्षा के क्षेत्र में तीन नयी योजनायें भारत में तत्काल चालू होनी चाहिये। केन्द्रिय शिक्षा तन्त्र में ये तीन योजनायें स्वीऔत हों और अनुदान न लेने वाली प्राइवेट संस्थायें भी अपने स्तर से इसे चालू करें तो देश का शीघ्र कायाकल्प हो सकता है। ये योजनायें ऐसी हैं कि इनका विरोध कोई नहीं कर सकता। कम ही खर्च में तीनों हो जायेंगी। पहली योजना है राष्ट्रिय शास्त्र रक्षा के उपाय। इसके अन्तर्गत उन शास्त्र ग्रन्थों को चिहिनत कर उनमें स्नातक स्तर की शिक्षा प्रतिवर्ष कम से कम तीन व्यक्तियों को दी जाये जो आजकल उपेक्षित हो चुकी है। उनकी उपेक्षा से होने वाली हानियों पर ध्यान भी वटाया जाये। विद्वानों को शास्त्र रक्षा के लिये जीविका देकर प्रोत्साहित किया जाये।

आज ऐसे शास्त्रग्रन्थों की संख्या ५० से ऊपर होगी। सच कहें तो भारत अपनी विगड़ी आजादी में सारा ज्ञान विज्ञान भूल चुका है। अब तो आधुनिक विज्ञान की कक्षाओं में भी प्रवेश के इच्छुक छात्र कम ही मिल रहे हैं। इसका कारण है निम्न कक्षाओं की घोर उपेक्षा। अब हमारी इस दुर्बुद्धि का वारण कौन करेगा। किस अंग्रेज अधिकारी ने यह सिखला दिया कि

तुम आजादी पाकर अपने बच्चों को योजनाबद्ध रूप से मूर्ख बनाते जाओ। वास्तव में बुद्धि प्रतिभा का विकास ही मुख्य विकास है, इसके अभाव में दूसरे विकास विफल होते हैं और टिक भी नहीं पाते। मानव का मस्तिष्क कुछ ऐसा बना है कि वह अपने जीवन में सर्वपक्षीय विकास नहीं कर सकता। यह बात हमारे ऋषि मुनियों ने समझी थी इससे मुख्य आध्यात्मिक विकास पर अधिक जोर दिया था। आध्यात्मिक विकास के लिये अध्ययन से तर्क शक्ति बढ़ती है, तब सारे व्यावहारिक पक्ष स्वयम् मजबूत हो जाते हैं। भारतीय अधिकांश विद्यायें आध्यात्मिक विकास से जुड़ी हैं। अन्तर्मुखता विद्याओं का केन्द्र है और बहिर्मुखता मूर्खता का। मूर्खों के जीवन में भी प्रचुर विकास देखा जाता है किन्तु वह विनाशोन्मुख होने से अनुकरणीय नहीं होता। उनका अनुकरण अनेक महान् संकटों का कारण बनता है। विश्वव्यापी आतंक और उग्रवाद अज्ञानमय विकास की स्पर्धा से जीवन में विकास पा रही अनैतिकता का दुष्परिणाम है। जहाँ भी अनैतिकता कम होगी वहाँ आश्रय की कमी आतंक और उग्रता फैल नहीं पायेगी। उत्तम विद्याओं के अध्ययन और उसके अनुरूप जीवन बनाने की प्रवृत्ति से अनैतिकता कुण्ठित रहती है। अतः शास्त्ररक्षा का व्यापक कार्यक्रम चलाना चाहिये शासन तन्त्र को और समाज सेवी संगठनों का भी शिक्षा के क्षेत्र में दूसरा अत्यावश्यक कार्यक्रम है पाठयक्रमों का पुनरीक्षण, शिक्षण कार्य की निर्विघ्नता और कुशलता एवम् परीक्षा प्रश्न पत्रों के स्तरों की समीक्षा और नकल जैसे अवैध उपायों का वारण। ये उपाय मौखिक और कागजी तौर पर तो हो रहे हैं पर वास्तव कुछ नहीं होता। शिक्षा का स्तर जितना गिरा है। राष्ट्र की समस्यायें उतनी ही बढ़ी हैं, यह तथ्य छिपा नहीं है। हम अपनी सारी समस्याओं के स्वयं जन्मदाता हैं, सुधार भी हम ही ला सकते हैं। यह कौन नहीं जानता कि अंग्रेजी शासन के समय का जो शैक्षिक स्तर था उसका चौथाई भी आज नहीं रह गया है। स्तर का गिरना अनैतिकता की वृद्धि से और स्नातकों की संख्या बढ़ाने की विवेकशून्य योजना से हुआ है और यह दुर्दशा केवल राष्ट्र नेताओं की धर्म निरपेक्षता, अनैतिकता, अर्थपरायणता और राष्ट्र के प्रति घोर उपेक्षा भाव का दुष्परिणाम है। आज हम यह मानने को बाध्य हैं कि आज तक की राष्ट्रिय नीतियों में बहुत सी बड़ी खामियाँ हैं और यह देख रहे हैं कि खामियों को दूर करने की तो

बात दूर है उन पर विचार करना भी पाप माना जा रहा है। हम किसी परायी लड़की को पसन्द करके फुसला करके उससे कोर्ट मैरेज कर लें यह तो हमारा अधिकार है किन्तु राष्ट्रिय दुर्नीतियों पर शंकाभरी दृष्टि डालना जघन्य अपराध है। कैसी बिगड़ी मनःस्थिति के लोग हम पर अपना शासन चला रहे हैं। शिक्षातन्त्र में उत्तरोत्तर सुधार, नीतियों का सतत परिशीलन निरन्तर अध्यात्म निष्ठा राष्ट्रियता और दायित्व की मौलिक भावनायें ये सब निर्विवाद उपकरण राष्ट्र के लिये रक्षक पोषक आहार से तनिक भी कम महत्त्व नहीं है।

मत ने लोलुपता के कारण नेताओं ने इन उपक्रमों की उपेक्षा ऐसी की कि अब कहीं ये देखने को भी नहीं मिलते। शासक और शासित में अन्तर होना चाहिये। शासक यदि अपने शासकीय गुणों से मत पाता है तब तो ठीक है किन्तु यदि नकल अध्यादेश हटाकर और नशाबन्दी कानून तोड़कर कोई मत और कुर्सी पाता है तो यह जनता की जन्मान्धता और नीति का नाश तथा राष्ट्र का दुर्भाग्य होगा। यह सब हो चुका है और आगे भी होने वाला है। कुर्सी के लोभ में प्रजा के दुर्गुणों को सहलाना निम्नस्तरीय मनःस्थिति के लिये सहज है। ऐसा व्यक्ति कुर्सी पाकर उसे विगाड़ता ही है। अपनी अप्रतिहत प्रज्ञा पौरुष और उदार शासन कौशल से प्रजा का हृदय जीतकर देर तक उस पर छाये रहना और पितातुल्य वात्सल्य से उसकी समृद्धि के यत्न करते रहना शुद्ध क्षत्रिय का लक्ष्य हे। ऐसा व्यक्ति प्रजा के सौभाग्य से ही कुर्सी पर मिलता है। आजादी के वाद से भारत के ऊँचे सिंहासन पर कुछ अच्छी मूर्तियाँ अवश्य आयीं किन्तु प्रऔति ने उन्हें शीघ्र उठा लिया। अब हमारा शुद्ध कर्तव्य यही है कि शिक्षातन्त्र को ऊँचा उठाकर देश में उत्तम मनःस्थिति वाले एक करोड़ कर्मठ युवक प्राप्त करने का शुद्ध संकल्प लें और अगली पीढ़ी को उत्तम बनाने का भरोसा रखें। इसके लिये बहुत त्यागमयी मैत्री और धैर्यपूर्ण कार्य योजना अपनानी होगी।

इस योजना की तयार एक रूप रेखा ‘‘राष्ट्रिय चिन्तन और प्रशिक्षण आपके हाथ में है। इस पर अपनी समीक्षा और सुझाव जोड़कर इसे पूर्ण सफल बनाया जा सकता है। शिक्षा क्षेत्र का यही तीसरा कार्यक्रम होता।

राष्ट्र की रक्षा राष्ट्र धर्म से सम्भव है

राष्ट्र की रक्षा राष्ट्र धर्म से ही सम्भव है। उसका अभी तक पूरा निरूपण नहीं हुआ है। कुछ लोग राष्ट्रियता के लिये वैदिक मर्यादा का त्याग चाहते हैं, कुछ लोग अपने मन से सुधार चाहते हैं, वे चाहते हैं कि वे जो कहें वहीं वेदों का तात्पर्य माना जाये। कुछ लोग राष्ट्रियता के लिये अच्छाइयों को पूरा दफना देना जरूरी समझते हैं। कुछ लोग असंकीर्ण काल्पनिक मानवता के गीत गाते हैं। कुछ तो यह भी मान रहे हैं कि अब हमारी रक्षा कोई विदेशी मिट्टी की मूर्ति ही कर पायेगी। कुछ लोग धर्म शब्द से ही व्यथित होकर राष्ट्रधर्म को भी साम्प्रदायिक कहकर सुनना सोचना नहीं चाहते। जिससे रक्षा हो सकती है उसे धर्म कहना पसन्द नहीं करते जबकि साम्प्रदायिकता सदा सम्मानीय अर्थ है। उसे जो कुछ कहना है वह अभी वे तय नहीं कर पाये हैं।

राष्ट्र के प्रति प्रजा का सर्वोच्च शाश्वत कर्तव्य ही राष्ट्रधर्म है। इस धर्म के अन्दर ही दूसरे सारे धर्म हैं। इसे समझने के लिये राष्ट्र को समझना होगा। उसके अन्दर ही राष्ट्रिय कर्तव्य भी आ जाता है। उसे स्नातक स्तर के छात्र पाँच साल में समझ सकते हैं। उसकी देशव्यापी शिक्षा होनी चाहिये। इस विषय पर यहाँ पूरा प्रकाश डाला गया है। राष्ट्र के प्रति सतत जागरुकता राष्ट्रियता की पहली पहचान है। राष्ट्र के सारे पहलुओ की अनुपेक्षा के धरातल पर उक्त जागरुकता टिकती है। सैन्य शक्ति राष्ट्र का महत्त्व पूर्ण अंग है किन्तु वह आत्मशक्ति से नियत्रित होती है। आत्मशक्ति संस्कारशीलमयी शिक्षा से बनती है। उस शिक्षा के पात्र बिरले होते हैं। वह शिक्षा आज देश में दुर्लभ हो चुकी है। कहीं कुछ जो भी देखने को मिलती है वह सुयोग्य क्षिक्षकों के अभाव में शक्तिहीन है। शिक्षा को जड़ से प्राणमयी स्नेहमयी कर्त्तव्यमयी एवं व्यापक तत्त्वबोधमयी बनाने की आवश्यकता है। राष्ट्रिय योजनाओं में इसे सर्वोच्च स्थान मिलना चाहिये। शत्रु राष्ट्रों के दलाल वर्जनीय सेक्युलरवाद के बहाने शिक्षा को बिगाड़ते रहते हैं। उन्हें शिक्षकों की शैक्षिक अक्षमता और आरक्षण के कारण छात्रों में आयी अयोग्यता, नकल की धड़ल्लेबाजी, नियुक्तियों में रिश्वतबाजी औरविभाग के कार्यालयों से रिश्वत के लिये दिनरात औत्रिम विवादों की

सृष्टि, ये भीषण दोष नहीं दिखते किन्तु यदि किसी ने कही वाणी वन्दना का कोई गीत गा दिया हो तो सन्निपात-ज्वर हो जाता है। जो शिक्षक या छात्र वाणी को देवता या परमात्मा का स्थान नही दे पायेगा वही तो नकल और रिश्वत की ओर बढ़ता जायेगा। वाणी के महत्व पर देहातों में ग्राम्यभाषाओं में बड़े अच्छे गीत गाये जाते हैं किन्तु हमारे नये राष्ट्रनायकों के हृदय में शायद वाणी वही है जो माइक से बहती हुई सबके कान फाड़ती रहती है। सही वाणी की भी स्तुति वे तब तक नहीं करेंगे जब तक कोई गोभक्षी उन्हें हार्दिक अनुमति न दे दे। ऐसी स्थिति में शिक्षा का स्तर कैसे सुधरेगा। भारतीय संस्औति में गाय और वाणी में तादात्म्य माना गया है, ''गौ'' वाणी को भी कहते हैं। वाणी का भक्षण करने वाला (म्लेच्छ) ही गोभक्षी होता है। शुद्ध सात्विक तात्त्विक वाणी का विरोध करने वाला व्यक्ति ही म्लेच्छ होता है। वह किसी भी देश-जाति कुल का हो सकता है। वही राष्ट्र विकसित होता है जो वाणी को सम्मान देता है। अंग्रेजों ने भारतीय दैवी वाणी को समझने और आत्मसात् करने में असीम समय और धन लगाया। हमारी वाणी को पाकर वे धन्य हो गये किन्तु हम क्या कर रहे हैं। श्रद्धास्पद पुस्तकों के पन्ने फाड़कर परीक्षा में नकल करते और नालियों में गलने के लिये डाल देते हैं। क्या किसी सेक्युलरवादी को यह खलता है ? अमर्यादित स्वतंत्रता किसी भी देश या समाज के लिये अच्छा नहीं होता। जो विचार राष्ट्र के हित में न हों उन्हें शीघ्र दफना देना चाहिये। दम्भपूर्ण मिथ्या कल्पना से ही कुछ लोग अलग राजनीतिक खिचड़ी पकाया करते हैं। देश ने तर्कपूर्ण-माणों का आदर करना छोड़ दिया है इससे राष्ट्रघाती दम्भपाखण्डों का बोलवाला है। अप्रामाणित कल्पना जाल का ध्वंस भी राष्ट्र रक्षा के लिये आवश्यक है।

जीवन के नियमों के चिरकाल उल्लंघन से शरीर में नाना व्याधियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। तब शरीर के वे ही घटक तत्त्व (त्रिधातु) व्याधि बन जाते हैं जो वास्तव में शरीर के धातु होते हैं। तब चिकित्सा में बहुत ध्यान और समय गँवाना पड़ता है और शरीर की पहली स्थिति वापस भी नहीं होती। इसी प्रकार विश्वव्यापी आतंक का निदान राजधर्म के शाश्वत नियमों का चिर उल्लंघन हैं। इससे राष्ट्रों की राजनीतियाँ दूषित होकर आतंक बन चुकी हैं। आज विश्प का कोई राष्ट्र यह दावा नहीं कर सकता कि हमारे

यहाँ की राजनीति अच्छी है। पाप से बेईमानी आती है, वह विद्वेष बनाती है। उस पर आतंक का त्रिपुर अवलम्बित होकर प्रजा को सताता है। शासनतन्त्र पुण्यशील हों, पापमय वोटों के भरोसे न रहें। पुण्यशील से तेजस्वी महापुरुष प्राप्त करे तब त्रिलोचन त्रिपुरादि क्षणभर में आतंकी त्रिपुरों को भस्म कर देंगे।

लोभ व्याल के ढिग विवेक शुक कहो कभी आ पाया है ?
वैभव से सन्तोष किसी भी धरती में क्या आया है ?
दुरित निरत के निकट कहो क्या शुभविचार भी आया है ?
सद्विचार के बिना जगत ने कहो कहाँ सुख पाया है ?

राष्ट्रिय चिन्तन और प्रशिक्षण सभी देशों का एक जैसा होना चाहिए किन्तु भौगोलिक सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों के अनुसार कुछ वाञ्छित अवाञ्छित अपरिहार्य भेद आ जाते हैं। अपने देश को एक उत्तम राष्ट्र बनाना प्रत्येक नागरिक का मानवीय कर्त्तव्य होता है। उक्त योग्यता पुरुषार्थचतुष्टय के समुचित ज्ञान पर आधारित होती है। मानवेतर तिर्यग् योनियों में कुछ अपवादों को छोड़कर केवल अर्थकामों का चिन्तन होता है इससे उनका जीवन राष्ट्रिय नहीं हो पाता। मानव उनमें यथाशक्ति कुछ को राष्ट्रिय बनाने का प्रयत्न करता है। मानव को तो राष्ट्रिय ही होना चाहिए।

मोक्ष और धर्म

हर मानव की कुछ बुरी लतें होती हैं, उनका बुरा फल वे स्वयं तो पाते ही हैं, अपने देश को भी वे उन अपनी बुराइयों से जोड़ते रहते हैं। उन लतों से छुटकारा पाना आरम्भिक मोक्ष है। इस चरम पुरुषार्थ पर भारतीय चिन्तन बहुत दूर तक हुआ है, वह भी अनेक व्यापक पहलुओं से। प्रत्येक देश को उसकी क्षमता के अनुसार यह चिन्तन मिलना चाहिए। भारतीय विदेशनीति के फलों में उपयोगिता की दृष्टि से यह सर्वोपरि है।

बुरी लतों से बचने के उपायों को धर्म कहते हैं। वे उपाय सर्वपक्षीय अभ्युदयों के भी हेतु होते हैं। उस देश का शासन उत्तम होगा जहाँ मानव को दुर्व्यसनों से बचाने के और जीवन के सभी पहलुओं में अभ्युदयों के सफल उपाय शासनतन्त्र में स्वीकृत हों। इस विषय पर भी भारतीय मनीषा सभी देशों से बहुत आगे है। बिडम्बना यह है कि आज स्वदेश और विदेश

दोनों इस विषय से अनभिज्ञ रहते हुए, जीवन से इसे न जोड़ते हुए, पुराने पन्नों पर छोड़े बैठे हैं। पुरुषार्थचतुष्टय पर विशद चिन्तन हो और न भूले यह सही शिक्षा की पहचान है।

भारत राष्ट्रिय चिन्तन

अभी हमें अपने भारत देश की राष्ट्रियता का चिन्तन करना विश्वहित में और स्वदेशहित में भी पहली आवश्यकता है। वायुमण्डलीय रोगाणुओं के हमलों से कष्टमय चर्मरोग शुरु होने पर चर्म सहित पूरे शरीर के स्वास्थ्य की चिन्ता विशेष आवश्यक हो जाती है। ऐसे ही जब कोई देश विदेशी गूढ़, प्रकट या उभयविध आक्रमणों का शिकार होने लगता है तब राष्ट्रिय चिन्तन की आवश्यकता बढ़ जाती है। पिछली शताब्दी के मध्य चीन में ऐसी आवश्यकता हुई थी।

एक लम्बे समय तक चीन का शासनतन्त्र बड़ा ही आदर्श था। उसका दोष यही था कि वह विदेशी विडाली नीतियों से अनभिज्ञ था। उसके परिणामस्वरूप वह ऐसी दुर्दशा में पहुँच गया कि विदेशी गुप्त प्रकट घातक हमलों का मुकावला करने में विफल तो रहा ही, स्वदेशवासियों की रक्षा में भी विफल रहने के कारण वह स्वदेशी आक्रोशों का भी शिकार हो गया। वही अवसर माओ मनीषी का आदर्श कार्यकाल था जिसमें देश रक्षा के लिए ही, राजनीतिकदोषग्रस्त स्वदेशियों का संहार अपेक्षित हो गया था। उस समय की माओ की दुःखहारी प्यारी नीति चीन में उसकी आँखें मुँदने के दिन से ही विखरने लगी हैं। उसकी वह कोई स्थायी राष्ट्रिय नीति न होकर आपातकालिक थी। वही आज धुन्ध बनकर नेपाल और भारत में इस्लामी भेड़ियों और क्रास वाले विडालों के संयुक्त शिकारमोर्चा में मदद बन रही है। वह नीति रूस में पहले ही दफन हो चुकी है, चीन में अन्तिम सांसें गिन रही है, अन्य देशों में उसकी अव्यावहारिक हिंसामयता के बड़े-बड़े पोल खुल चुकने से बड़े धूम-धाम से उसके विदाई समारोहों की तैयारियाँ हो रही हैं, किन्तु वहाँ भी ऐसी कोई राष्ट्रिय नीति नहीं सोची जा रही है जिससे स्वदेश और परदेश निरातंक सुखमय जीवन चला सकें। आज के विश्व में परस्पर अविश्वास का बाहुल्य हो गया है, आत्मरक्षा का उपाय केवल आतंक और हिंसा माना जा रहा है, दुर्नीतियों को धर्मशास्त्र

का और धर्म को अधर्म का दर्जा मिल चुका है। आज भारत की स्थिति भी माओकालिक चीन की सी बनती जा रही है, उस समय चीन में राजतन्त्र था, राजा अक्षम होता हुआ भी न तो प्रजा की राय लेता था और न अपना अधिकार छोड़ता था, इससे वहाँ की संगठित प्रजा को विदेशी हमलावरों के साथ-साथ अपनी शासनसत्ता से भी लोहा लेकर अपनी नयी सत्ता स्थापित करनी पड़ी। वर्तमान भारतीय नेतागण जो भी नये चुने जाते हैं वे सब अपनी और अपनों की अनैतिकता के मकड़जाल में ही घूमते रहने के लिए बाध्य देखे जाते हैं। ऐसी उनकी बुरी मनःस्थिति से लाभ उठाते हुए, शत्रु देश की दुर्नीतियों के भारतीय ठेकेदार, नाना प्रकार के बाहरी भय और लोभ जमाते हुए, कुर्सियों में अनैतिकता और जनसामान्य में हिंसावृत्ति बढ़ाकर पूरे देश में अस्थिरता पैदा करते हुए शत्रुपक्ष की सन्तुष्टि बढ़ाकर अपनी तोंद बढ़ा रहे हैं। ये अपने क्षुद्र लाभ से इतने सन्तुष्ट हैं कि इनके जानते देश को अतिशीघ्र रसातल तक पहुँचाने और उस स्थिति में अपनी और अपनी जाति का भी नामों निशान मिटा डालने वाली कोई गतिविधि नहीं हो रही है।

ये सारे अनर्थ देशव्यापी उस कुशिक्षा के परिणाम हैं जिसमें अनैतिकता अच्छा तालमेल रखती हुई घुलीमिली रहती है। शिक्षा के दोष ही आज की देश व्यापी उस अनैतिकता का आधार हैं जिससे देश सन्निहित खतरे के कगार पर पहुँच चुका है और राजनेताओं को मोतियाबिन्द न होने पर भी स्थूल तथ्य दिखाई नहीं देता। वे इसे केवल युगधर्म मानकर चल रहे हैं। ऐसी स्थिति में देश को समृद्धिशाली राष्ट्र बनाने के वे सपने, जो अपना सर्वस्व होम करने वाले स्वतन्त्रता संग्राम के दूरदर्शी बीरों के हृदय में पलते थे, उनका अब क्या होगा ? वर्तमान नेताओं के वादों का माने भी क्या होगा ? स्यात् सन् ४७ के आसपास के पाकिस्तानी या इस्लामी आतंकी उस हिंसा ने, जो आज भी जारी है, जो दूर होने से हल्की लगती है, भारतीय मानस को ऐसा मोड़ दिया है जिससे उसमें कभी भी राष्ट्रियता का स्वाभिमान जग न सके। तब यह कौन सी आजादी है और क्या चुनाव और विधायिका और क्या है संसद ? क्या वही संसद् है जो कल की पाकिस्तानी गोली खाकर आज भी बेहोशी की नीद में है ? इसे कम से कम यह भी नहीं सूझा कि हम लोगों को एकत्र कर राष्ट्रिय सुरक्षा की कभी न

भूलने वाली चेतावनी ही दे दें। वह चेतावनी वह राष्ट्रिय प्रशिक्षण ही हो सकती थी जो धर्मनिरपेक्ष मानस पटल पर उतर ही नहीं सकती। स्यात्, थप्पड़ खाने पर भी संसद् के एक न होने का कारण यह हो कि उसमें भी भारतीय भोली जनता से छल से मतपत्र लेकर पाकिस्तानी एजेन्ट रहे हों जो थप्पड़ को ही झुठला रहे हों तो ऐसी स्थिति में हमें क्या करना चाहिए, उत्तर लीजिए संस्कृत अल्लाह की बोली से-छिन्द्यां स्वबाहुमपि वः प्रतिकूलवृत्तिम्, (भागवत) यानी राष्ट्रहित के विपरीत यदि मेरा हाथ चलता हो तो मैं उसे भी काट सकता हूँ।

भोले सांसदो ! तुमने उस माओ से शिक्षा नहीं ली जिसने अपने देश की दुर्नीति पीड़ित जनता को ढाल बनाकर, राष्ट्रहित के विरुद्ध सोच वाले राज परिवार को ही समाप्त कर दिया और देश में एक आदर्श शासन कायम करने का भरपूर प्रयास भी जीवन भर किया। खेद है कि उसका प्रयास अब विखर रहा है। उसने हमारे कौटिल्य से राजनीति नहीं सीखी। आप भी महोदय नहीं सीख पायेंगे। वह संस्कृत में है। अच्छा, तो अगली पीढ़ी को राष्ट्रिय प्रशिक्षण के साथ स्वाभिमानी प्रौढ़ पण्डित बनाइये। वही राष्ट्र की रक्षा करेगी। तब तक आाप धर्मनिरपेक्षता की अफीम भले खाते रहिए किन्तु राष्ट्रिय प्रशिक्षण की रूप रेखा समझने के प्रयत्न जारी रखिये। राष्ट्रिय प्रशिक्षण प्राप्त व्यक्ति उस समग्र राष्ट्रियता से ओत-प्रोत रहेगा जिसका दर्शन हमारे देश के राष्ट्रियता के अभिमानी पुराने मनीषियों को न होने से देश में अनर्थ उत्तरोत्तर बढ़ते जा रहे हैं। सारे अनर्थों की जड़ अज्ञान है। हमें वह ज्ञान अर्जित करना है जिससे हम अनर्थों को सत्वर वर्जनीय मानते हुए उनके वारण में पूर्ण सक्षम हों।

आज भारत में ईसाई मुसलमानों और उनकी नीतियों के विरुद्ध एक सशक्त संगठन खड़ा करने की आवश्यकता नहीं है बल्कि उन्हें पूर्ण रूप से अपने पक्ष में, अज्ञानमय कांग्रेसी नीति के बिना, विशुद्ध राष्ट्रिय बोध के प्रकाश में, लेते हुए उनके कण्ठ में ''संगच्छध्वम्'' (साथ चलो) का नारा ऐसा बैठा दिया जाये कि अन्धविश्वास के साथ क्रास और आसमान के तारे के साथ अर्धचन्द्र एक साथ अनन्त में विलीन हो जायें और पूर्ण वैज्ञानिक व्यावहारिक तत्त्वबोध का निष्कलंक पूर्णचन्द्र विश्वचित्ताकाश में दिनरात आह्लादमय शान्ति के साथ कल्याणमय प्रकाश देता रहे। यह कोई

कविकल्पना नहीं है, व्यावहारिक बात है जो प्रयत्न होने से केवल दस वर्षों में सारे विश्व को अभिराम रूप से अविराम उपलब्ध रह सकता है। आइये, राष्ट्रिय प्रशिक्षण क्रम समझिये, अपनाइये और धर्मनिरपेक्षता का व्यर्थ का बोझ उतार दीजिए। शुभम्

राष्ट्रिय प्रशिक्षण क्रम की अष्टवर्षीय रूपरेखा

१. केवल एक शास्त्र का तलस्पर्शी भी ज्ञान मानव को सामाजिक नहीं बना सकता।

२. व्यापक ज्ञान के लोभ में एक भी शास्त्र में अपेक्षित श्रम न होना मानव को सब ओर से हलका रखता है, वह कर्तव्य नहीं समझ पाता।

३. कर्त्तव्य बोध के अभाव में सारा ज्ञान न केवल भार होता है बल्कि वह कुकृत्य में सहायक बनकर जीवन को बर्बाद भी करता है।

४. संस्कृत छात्र अव्यावहारिक माने जाते हैं। संस्कृत शिक्षा निष्फल मानी जा रही है। इसे व्यावहारिक और पूर्ण सफल बनाकर राष्ट्र को सुरक्षित और विकसित बनाने की आवश्यकता है। इसके अभाव में न तो राष्ट्र की रक्षा सम्भव है न विकास।

५. परराष्ट्रिय गुप्तचर एजेन्सियाँ अपनी सफल भेदनीति से भारत शासन को सब ओर से विफल बना रही है। मेकाले को कुशिक्षा से दिङ्मूढ़, विदेशी अन्यायपूर्ण धन के लोभी बहुत से देशवासी परराष्ट्रिय दुर्नीति को सफल बनाने में सहयोग दे रहे हैं। इस सिलसिले को शीघ्र समाप्त करने के लिए एक ऐसी शिक्षा विकसित करने की आवश्यकता है जिससे राष्ट्रिय शासन-शक्ति में गुणात्मक विकास हो, विधायक और सांसद अभद्र चिन्तन और भाषा से विरत हों। उनका हृदय राष्ट्र को आदर्श लक्ष्य की ओर बढ़ाने की व्यावहारिक कल्पना से ओतप्रोत हो। वे अपने बालहठ से विधायिका और संसद को पंगु बनाकर वाहवाही लूटने के नशे में न रहें। अपनायी गयी अपनी नीति को प्रमाण-विद्या की कसौटी पर परखने की क्षमता रखते हों। सत्ता में पहुँचने के लिए जनता को शराब न पिलायें। स्वयं मर्यादा में रहें और समाज को भी रहने दें।

६. हर एक देश की एक सहज असाधारण मानसिकता होती है। वही उसे दूसरे देशों से अलग रखकर उसकी रक्षा करती है।

७. भारत की असाधारणता धर्मप्रधानता है। अपनी सहज बुद्धि से धर्म का जो भी रूप समझ में आता हो उसके प्रति अगाध निष्ठा ही धर्मप्रधानता है। यह इस देश का शाश्वत स्वभाव है। इसे बचाकर ही यह जीवित रह सकता है। ईसाइयत और इस्लाम के प्रति एक भारतीय की निष्ठा दूसरों से कुछ ज्यादा ही होगी।

८. आत्यन्तिक दुःखनिवृत्ति का अव्यवहित साधन आत्मविद्या है। वही मुख्य धर्म है। उसके साधन हैं शिक्षा, व्रत, जप, दान, उपकार आदि। ये सब अंगभूत धर्म हैं।

९. किसी भी राष्ट्र का शासनतन्त्र ऐसा होना चाहिए कि वह जनसाधारण को उभयविध धर्मों के प्रति श्रद्धावान बनाये। श्रद्धा का कोई विकल्प नहीं होता।

१०. भारत-राष्ट्र की सारी नीतियाँ धर्म के आलोक में होनी चाहिए। यदि किसी भी राष्ट्र में अधिकांश लोग धर्मविमुख हों तो वह विमुखता कतिपय चिर दुर्नीतियों का परिणाम होता है। उसे समाप्त करने के लिए राष्ट्र की नीति में परिवर्तन लाना आवश्यक होता है। परिवर्तन शिक्षा से ही शुरु हो सकता है।

११. नागरिकशास्त्र में नागरिकता की परिभाषा है। नागरिकता को राष्ट्रियता की पूर्वावस्था के रूप में स्वीकार करना चाहिए। जिस व्यक्ति में राष्ट्रियता का भाव हो वही राष्ट्र का हित कर सकता है। राष्ट्रियता स्पष्ट रूप से परिभाषित हो। वह प्रत्येक छात्र में क्रियात्मक रूप में उपलब्ध हो। चेष्टाओं से राष्ट्रियता प्रमाणित होने पर ही उसे प्रस्तुत उपाधि प्रमाण-पत्र दिया जाय।

१२. जिसे भारतीय आदर्शों के प्रति आस्था न हो उसे देश की नागरिकता भी नहीं मिलनी चाहिए। जैन, बौद्धों और सिक्ख, ईसाई, मुसलमानों को अपने-अपने मजहबों के प्रति आस्था के साथ भारतीय उदार आदर्श स्वीकार करने में कठिनाई नहीं होनी चाहिए। सारे वैदिक अवैदिक मजहब महान् वैदिक धर्म की छोटी-छोटी इकाइयाँ हैं। हठवादी मान्यता से कोई स्थापना नहीं होती। मुसलमान किसी भी गैर इस्लामिक शासनतन्त्र को मान्यता नहीं देते। उसे तोड़कर इस्लामिक शासन कायम

करने के लिए जेहाद (आत्मोत्सर्गपर्यन्त त्याग) करते हैं। उनकी यह प्रवृत्ति सराहनीय और अनुकरणीय भी है। वे अपने इस्लाम को वेदों में अरबी नजरों से पढ़ नहीं पाते। महासमुद्र को वे अपने तेल के कुंओं से ज्यादा नहीं समझते। पीने का पानी वे तेल से खरीद लेते हैं। मेघ भी उनके लिए बेकार है। किन्तु इस्लाम से अरब का रवा (बालू कंकड़) निकाल दिया जाये तो जो बचेगा वह शुद्ध वैदिक सनातन धर्म ही होगा।

जिस व्यक्ति को राष्ट्र के प्रति शैक्षिक, मौखिक एवं व्यावहारिक रूप से श्रद्धा प्रदर्शित करना पसन्द न हो उसे राष्ट्र में रहने का अधिकार नहीं होना चाहिए।

१३. प्रस्तुत प्रशिक्षण में प्रवेश की अर्हता शारीरिक और मानसिक पूर्ण क्षमता एवं कक्षा दस की परीक्षा में ६० प्रतिशत लब्धांक होना चाहिए। प्रवेश की अर्हता की जाँच तीन स्तरों में होगी, पहली जाँच एक घण्टे की होगी, उसमें सफल छात्र अगली सातदिनों की जाँच के लिए रख लिया जायेगा। सात दिनों में मनोवैज्ञानिक उपायों ये यह देखा जायेगा कि इसमें राष्ट्रविरोधी भावनाओं का अनुपात ५० प्रतिशत से ऊपर न हो, ऊपर वाले को छोड़ दिया जायेगा और कम वालों को प्रशिक्षण से सुधार के भरोसे रख लिया जायेगा। प्रथम दो वर्ष प्रशिक्षण के दौरान परीक्षण होता ही रहेगा, सन्तुष्टि न होने पर ''विशारद'' जैसी कोई उपाधि देकर विदा कर देना होगा। प्रशिक्षण के प्रोफेसर व्यावहारिक मनोविज्ञान में कुशल होंगे। प्रवेश परीक्षा का एक अच्छा कोर्स होगा।

१४-प्रशिक्षण को चुस्त और पूर्ण सफल बनाने के लिए सैनिक प्रशिक्षण का रूप देना होगा। साथ ही आज हमें इस्लामिक और दूसरे आतंकी उग्रसंगठनों से बहुत कुछ सीखना होगा। वे अपने शिष्यों के प्रति भृंगी कीट वाली नीति अपना कर, उन्हें सम्मोहित कर उनका हृदय निकालकर एक कृत्रिम हृदय दे देते हैं। उस कृत्रिम हृदय से प्रशिक्षित होकर वह निरन्तर हिंसा के लिए तैयार रहता है और प्रशिक्षण से प्राप्त कलाओं से स्वयं बचता हुआ कल्पित काफिरों या उनके माने हुए, समाज को नुकसान पहुँचा रहे कीड़ों को मारता रहता है और मौत की परवाह नहीं करता। उसके जीवन की आर्थिक सारी अपेक्षायें प्रशिक्षण तन्त्र उसकी मृत्यु

के बाद भी पूरी करता रहता है।

भृंगी कीट का दृष्टान्त हमारे अध्यात्मविद्या के ग्रन्थों में मिलता है। हम प्रायः पाते हैं कि लाल ततैया जैसा एक कीड़ा होता है, जो दीवालों पर गीली मिट्टी से घड़े के आकार का एक सुन्दर प्रशिक्षण केन्द्र बनाता है, कुछ लोग उसे कुम्हार भी कहते हैं, हम उसे असली प्रजापति भी कह सकते हैं, वह जीवित कोमल लम्बे हरे कीड़ों को उनकी जाति की सही पहचान रखता हुआ खेतों से प्रायः सात की संख्या में बारी-बारी से ढूँढ़ लाता है, शायद वे कीड़े उसकी भनभनाहट से मूर्च्छित हो जाते हैं और वह उन्हें एक-एक कर उस घटाकार प्रशिक्षण केन्द्र में धीरे-धीरे भर देता है, मूर्च्छित कीड़े भाग नहीं पाते, जब उसका घड़ा भर जाता है, तब मिट्टी से उसका मुँह बन्द कर देता है, वे कीड़े अन्दर मूर्च्छित अवस्था में, शायद भृंगी के योगबल से महीनों जीवित रहते हैं। मुँह बन्द करके भृंगी समयबद्ध रूप से, सम्मोहित अवस्था में पड़े उन कीड़ों को अपनी भनभन का पाठ पढ़ाता रहता है, सम्मोहन पूर्वक उपदेश के फल स्वरूप उन कीड़ों में ''अहम् भृंगी ब्रह्मास्मि'' जैसी ''अहम् अस्मि'' जैसी एक भावना बनती है, तब उनके शरीर में एकदम परिवर्तन हो जाता है, सारी विषमताओं को छोड़कर सारे कीड़े क्रम से भृंगीशिशु बनकर बाहर निकलते और अपनी जातीय निष्काम प्रवृत्तियों में जुट जाते हैं। यह कार्य सृष्टि के आरम्भ से चल रहा है।

भृंगी हिंसा नहीं सिखलाता, वह तो शुद्ध कीड़ों को अनन्त आकाश में दूर तक विचरण के योग्य, अपेक्षाकृत लम्बी आयु वाला अपना रूप प्रदान करता है, वह कुम्भकार, प्रजापति योगी गुरुदक्षिणा नहीं लेता, जीवन भर परोपकारपरायण वह तो परोपकारियों का समूह तैयार करता है। सोचिये, क्या वह रागद्वेषमय दम्भपाखण्डग्रस्त कामान्ध मानव जाति में भूलकर भी जन्म लेना चाहेगा ?

इस्लामिक गैर इस्लामिक आतंकियों ने भृंगी से रूप परिवर्तन तो सीखा है किन्तु अहिंसामय परोपकार की बात वे नहीं सीख पाये। भृंगी जातीय पहचान के आधार पर कीड़ों का चयन करता है इससे उसे हिंसा की आवश्यकता नहीं होती, वह उन कीड़ों को पकड़ता ही नहीं जिनमें हिंसा का भाव हो और परिवर्तित न हो सकें। विश्व व्यापी हिंसामय

जन्तुओं से दूर रहते हुए, पृथ्वी पर रेंगते हुए जल्दी मरने वाले जन्तुओं को दीर्घायु, सुखमय, गगनचारी, परोपकारी बनाने का व्रत भृंगी से ही सीखा जा सकता है।

हम चाहते हैं कि हमारा प्रशिक्षण भृंगी का पूरा पाठ तो अपनाये ही पर उसकी भनभन की जो व्याख्या में ऋषिमुनियों ने सहस्रों ग्रन्थों में की हैं उनका समञ्जस निष्कर्ष भी स्नेह पूर्वक छात्रों को पिलाते हुए भारतदेश की विश्वकल्याणी प्रतिष्ठा बढ़ाये, प्रस्तुत है रूपरेखा।

प्रस्तावित अष्टवर्षीय प्रशिक्षण क्रम कुछ इस प्रकार हो सकता है। प्रथम वर्ष में धारा प्रवाह संस्कृत भाषण की योग्यता हो जाय इसके लिए निर्धारित गद्य-पद्य वाचन रचनानुवाद का अभ्यास और कण्ठ पाठ का अभ्यास कराया जाये इसी वर्ष ''श्रुत बोध'' के सभी छन्दों का परिचय हो जायेगा जिससे किसी भी नये श्लोक के वाचन में कठिनाई न हो। उच्चारण की शुद्धि भी प्रथम वर्ष में हो जायेगी। सत्रान्त में परीक्षा होगी। कृपा से कोई उत्तीर्ण नहीं होगा। ६० प्रतिशत से कम अंक मिलने पर अनुत्तीर्ण माना जायेगा। पूरे सत्र में उपस्थिति रहने पर जो अनुत्तीर्ण होगा, उसे आगे छोड़ दिया जायेगा। परीक्षा में प्रतिवर्ष आठ प्रश्नपत्र होंगे। उनका क्रम निम्नांकित होगा-

''प्रथम वर्ष में''

प्रथम प्रश्न-नये संस्कृत गद्यवाचन बीस मिनट पूर्णांक ५०

द्वितीय प्रश्न-नये संस्कृत पद्यवाचन बीस मिनट पूर्णांक ५०

तृतीय प्रश्न-निबंध रचना पच्चीस वाक्यों में पूर्णांक ५०

चतुर्थ प्रश्न-हिन्दी संस्कृत अनुवाद ५० वाक्य पूर्णांक ५०

पंचम प्रश्न-कंठस्थ पचास श्लोक वाचन पूर्णांक ५०

षष्ठ प्रश्न-निर्धारित पूछे गये पंद्रह छन्दों का लक्षण उदाहरण बतलाना पूर्णांक ३० एवं सुनाये गये दस श्लोकों के छन्द बतलाने पर २० अंक होंगे। ये छः प्रश्न संस्कृत में होंगे।

सातवाँ प्रश्न-राष्ट्रियता से सम्बन्धित पाँच प्रश्नों का हिन्दी में उत्तर

लिखना है।

आठवाँ प्रश्न–अंग्रेजी होगा।

सूचना– (क) राष्ट्रियता एक अनुसंधान पूर्ण नया विषय होगा इस पर छः नये ग्रन्थ लिखने होंगे जो छठे वर्ष तक में पढ़े जायेंगे। ग्रन्थों के विषय का विवरण अन्यत्र है।

(ख) अंग्रेजी का शिक्षण भाषा परिचय के लिए होगा और वह संस्कृत, व्याकरण शास्त्र की रीति से विश्लेषणात्मक और तुलनात्मक होगा। उसमें अधिक से अधिक पदच्छेद और पदार्थ परिचय कराया जायेगा। संस्कृत व्याकरण में प्रौढ़ व्यक्ति ही संस्कृत से तुलना करता हुआ अंग्रेजी पढ़ायेगा। अपेक्षित प्रशिक्षण के लिए अपेक्षित अध्यापक भी तैयार करने होंगे।

"दूसरा वर्ष"

प्रथम प्रश्न–भट्टिकाव्य, व्याकरण प्रधान व्याख्या सहित छः सर्ग–पूर्णांक ५०

द्वितीय प्रश्न–मध्यकौमुदी–१/३ भाग पूर्णांक ५०

तृतीय प्रश्न–मनुस्मृति-प्रथम अध्याय, भगवद्गीता प्रथम से छः अध्याय तक गीतार्थसंग्रहदीपिका व्याख्या सहित पूर्णांक ५०

चतुर्थ प्रश्न–सृष्टिसम्बन्धी विभिन्न पाश्चात्य दृष्टियाँ पूर्णांक ५०

पंचम प्रश्न–भारत वर्ष का राजनीतिक इतिहास पूर्णांक ५०

छठा प्रश्न–भारतीय राजनीति (प्राचीन आर्ष ग्रन्थों के अनुसार) पूर्णांक ५०

सातवाँ प्रश्न–प्रथम वर्ष की तरह आगे

आठवाँ प्रश्न–प्रथम वर्ष की तरह आगे

सूचना–(क) छठें प्रश्न का विषय राष्ट्र निष्ठा का शोधक वर्धक और पोषक होगा। जो आगे के छः वर्षों के प्रशिक्षण में मूलभूत श्रद्धा का निर्वाह करेगा।

(ख) भट्टिकाव्य का शिक्षण व्याकरण के प्रायोगिक बोध के लिए होगा। प्रश्न केवल व्याकरण सम्बन्धी तीस अंकों के होंगे। साहित्यिक प्रश्नों में बीस अंक होंगे।

(ग) प्रथम द्वितीय प्रश्न संस्कृत में होंगे और अगले प्रश्न संस्कृतनिष्ठ हिन्दी में होंगे।

तीसरा वर्ष

(सभी प्रश्नपत्रों में पूर्णांक ५० रहेगा)

प्रथम प्रश्न–भट्टिकाव्य ७–१४ सर्ग व्याकरण व्याख्या

द्वितीय प्रश्न–मध्यकौमुदी का मध्य भाग

तृतीय प्रश्न–मनुस्मृति द्वितीय अध्याय (नवीन विस्तृत व्याख्या के साथ), भगवद्गीता–७–१२ अध्याय (गीतार्थसंग्रहदीपिका व्याख्या)

चतुर्थ प्रश्न–सृष्टि सम्बन्धी वैज्ञानिक और वैदिक मान्यताओं में समन्वय

पंचम प्रश्न–विश्व का अनादि सांस्कृतिक इतिहास

षष्ठ प्रश्न–अस्त्र शस्त्रों का अभ्यास–इसकी परीक्षा प्रत्येक माह के अन्त में होगी उसमें मिलें अंकों का अनुपात ही वार्षिक परीक्षा में लब्धांक होगा।

सातवाँ प्रश्न–पूर्ववत् आगे

आठवाँ प्रश्न–पूर्ववत् आगे

विवरण–छठे प्रश्न के छः वर्षों तक चलने वाले प्रशिक्षण की रूपरेखा और तकनीक का निर्धारण अनुभवी विश्रान्त सेनानायक लोग देशकाल परिस्थिति समझते हुए करेंगे। राष्ट्रिय सैनिकों और आतंकियों के प्रशिक्षणों में जो अन्तर रहता है उसे समझना भी इस प्रशिक्षण में एक महत्त्वपूर्ण विषय होगा।

इस सन्दर्भ में ध्यान रखने योग्य विषयान्तर

राष्ट्रिय सैनिक, सीमा सुरक्षा बल और पुलिस अधिकारी बार-बार आतंकियों से धोखा खाते हैं। धोखे से बचने के लिये भी कोई अलग प्रशिक्षण हो इसका ध्यान रखा जाना चाहिए। भारत सरकार को एक ऐसा प्रशिक्षण तन्त्र विकसित करना होगा जो देश के कक्षा दस के छात्रों में से शारीरिक मानसिक दक्षता के आधार पर कुछ छात्रों का चयन करके उन्हें प्रतिवर्ष ६० दिनों के क्रम से पाँच वर्षों तक सैनिक प्रशिक्षण देकर एक डिप्लोमा दिया करें। यह प्रशिक्षण उनके लिए आगे अनिवार्य होगा जो कुशिक्षावश अनुतीर्ण हो गये हैं। अनुतीर्णों को प्रशिक्षित करना इसलिए अनिवार्य होगा कि वे ही ज्यादातर राष्ट्रविरोधी गतिविधियों में लिप्त पाये जाते हैं। प्रशिक्षण से उनमें राष्ट्रियता लाकर उनका एक पंजीकृत यूथ बनेगा जिसे राष्ट्रिय रक्षा का दायित्व सौंपा जायेगा। दायित्व निभाने पर उनके लिए कुछ पुरस्कार होगा और राष्ट्रविरोधी गतिविधियों में लिप्त पाये जापे पर उनके लिए औरों की अपेक्षा तीव्र दण्ड का विधान होगा।

उक्त यूथ कतिपय गावों से सम्बन्धित होगा, वहाँ कोई भी आतंकी घटना होने पर यूथ दण्डित होगा। कानूनी हानि-लाभों को समझकर इस नियम को व्यवस्थित किया जायेगा।

चौथा वर्ष

प्रथम प्रश्न-भट्टिकाव्य शेष भाग-५०

द्वितीय प्रश्न-मध्यकौमुदी शेष भाग-५०

तृतीय प्रश्न-(क) धर्मशास्त्र संग्रह-२५

(ख) भगवद्‌गीता शेष भाग उक्त व्याख्या-२५

चौथा प्रश्न-सृष्टि प्रक्रिया एक समञ्जस, आर्षदृष्टि-५०

पंचम प्रश्न-विश्व में सांस्कृतिक परिवर्तनों के रहस्य और परिणाम ५०

षष्ठ प्रश्न-पूर्ववत् आगे

नोट-ताराचिह्न वाले विषयों की नयी पुस्तकें बनेंगी।

सप्तम प्रश्न-पूर्ववत् आगे

अष्टम प्रश्न-पूर्ववत् आगे

अंग्रेजी यहीं समाप्त होगी। आगे २ वर्ष अरबी चलेगी।

विवरण-तृतीय प्रश्न (क) इसमें १०० श्लोक विशदहिन्दी व्याख्यान के साथ संकलित होंगे। ५० श्लोक मनुस्मृति के होंगे और ५० अन्य धर्मग्रन्थों के होंगे इनमें सृष्टिक्रम, शिक्षा के नियम, गृहस्थ दिनचर्या, दण्ड विधान और सामान्य महान धर्म के विषय संकलित होंगे।

चतुर्थ प्रश्न-सक्षम विद्वान् द्वारा नामानुरूप ग्रन्थ निर्मित होगा।

पंचम प्रश्न-नया ग्रन्थ होगा जिसमें दार्शनिक और धार्मिक दृष्टिकोणों से सांस्कृतिक प्राचीन इतिहास का निरूपण होगा।

पाँचवां वर्ष

प्रथम प्रश्न-लघुत्रयी (कुमार सम्भव, रघुवंश, मेघदूत) का आधा।

द्वितीय प्रश्न-पाणिनीय सूत्राष्टाध्यायी का आधा

तृतीय प्रश्न-ऋग्वेद १/४ सामान्य अर्थ सहित

चतुर्थ प्रश्न-पुराण और बाइबिल का सामान्य परिचय

पंचम प्रश्न-विश्व का राजनीतिक इतिहास

षष्ठ प्रश्न-पूर्ववत् आगे

सप्तम प्रश्न-पूर्ववत आगे

अष्टम प्रश्न-अरबी भाषा का सामान्य ज्ञान

विवरण चौथे और पांचवे प्रश्न की पुस्तकें सम्पादित होंगी। अरबी भाषा का ज्ञान दो वर्षों में पूरा करने की योजना होगी। प्रथम वर्ष में उसका सामान्य परिचय होगा जिसमें यथासम्भव अधिक शब्दों के परिचय के लिए कुछ ग्रन्थ निर्धारित रहेंगे। दूसरे वर्ष उसका ज्ञान भाषा विज्ञान की दृष्टि से और संस्कृत व्याकरण की रीति से कराया जायेगा।

छठा वर्ष

प्रथम प्रश्न–लघुत्रयी का शेष

द्वितीय प्रश्न–अष्टाध्यायी का शेष

तृतीय प्रश्न–ऋग्वेद २/४ भाग (ईश्वर के साथ चेतन के सम्बन्ध और कर्तव्यों का बोध कराने वाली व्याख्या के साथ)

चतुर्थ प्रश्न–कुरान और बाइबिल का तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक परिचय

पंचम प्रश्न–विश्व का औद्योगिक इतिहास

षष्ठ प्रश्न–पूर्ववत् आगे

सप्तम प्रश्न–पूर्ववत् आगे

अष्टम प्रश्न–अरबी (विश्लेषणात्मक अध्ययन)

सातवां वर्ष

प्रथम प्रश्न–श्रीमद्भागवत प्र. स्कं. से अष्टम स्कन्ध तक

द्वितीय प्रश्न–महाभाष्यसार (सम्पूर्ण का सामान्य परिचय)

तृतीय प्रश्न–ऋग्वेद ३/४ (पूर्ववत् व्याख्यान के साथ)

चतुर्थ प्रश्न–जैन, बौद्ध दर्शनों और साधनाओं का सामान्य परिचय

पंचम प्रश्न–भारत का विश्व के साथ राजनीतिक, वाणिज्यिक सांस्कृतिक प्राचीन सम्बन्ध (वेद आदि प्राचीन ग्रन्थों से)

षष्ठ प्रश्न–पूर्ववत् आगे

सप्तम प्रश्न–पूर्ववत् आगे

अष्टम प्रश्न–विश्वभाषापरिवार के जन्म और विकास का प्रामाणिक क्रम-प्रत्यक्ष और अनुमान पर आधारित संकलित पुस्तक का नाम-विश्वभाषापरिशीलन।

आठवाँ वर्ष

१. श्रीमद्भागवत शेष

२. महाभाष्य १-५

३. ऋग्वेद शेष और सामवेद

४. वैदिक, अवैदिक दर्शनों के साथ साधर्म्य वैधर्म्य

५. असंस्कृत देशी-विदेशी भाषायें और संस्कृत

६. पूर्ववत् आगे

७. पूर्ववत् आगे

८. पिछले वर्ष का आगे का विषय

विवरण– (क) श्रीमद्भागवत राष्ट्रियता का एक महान् कोश है। इसी दृश्टि ये इसका शिक्षण होगा। (ख) यह पाठ्यक्रम आगे और चार वर्ष तक चलेगा। उसकी उपाधि एम०ए० स्तर से ऊपर की होगी। उसका कोई अच्छा नामकरण होगा। यह शिक्षा अनुसन्धान के रूप में होगी। अनुसन्धान के विषय दो वर्गों में विभक्त होंगे। पहला वर्ग प्रशिक्षण को उत्तरोत्तर सफल और सुदृढ़ बनाने के सम्बन्ध में होगा। अनुभव के आधार पर इसमें बहुत से विषय आयेंगे।

दूसरा वर्ग राष्ट्रविरोधी पक्षों के मुकाबले और दमन से सम्बन्धित होगा। यह भी अनुभव के आधार पर नानात्मक होगा जो यथा समय ही स्पष्ट हो पायेगा। इसके आधार पर कोई नौकरी नहीं मिलेगी किन्तु इससे इस प्रशिक्षण तन्त्र का नेतृत्व करने का अधिकार मिलेगा। राष्ट्र के प्रति समर्पित अर्थनिरपेक्ष व्यक्ति को ही यह प्रशिक्षण और उपाधि प्राप्त होगी।

यह रूपरेखा कोई अन्तिम नहीं है। इसे अन्तिम रूप देने के लिए विदेशी भाषाओं के विशेषज्ञ जो स्वयं संस्कृत और संस्कृति पर निष्ठावान हों वे और सेवानिवृत्त सैन्यनायक और राष्ट्रनायक वर्ग मिलें और समस्त चिन्तन पूरा करके व्यापक उपयोगिता का भरोसा होने पर स्वीकृति देंगे।

राष्ट्रियता पर प्रामाणिक निबन्धों के लिए दिग्दर्शन

भाग–1

क्षेत्र, आदर्श पुरुष, संस्कृति, इतिहास और शासन इन पाँच की एक संज्ञा राष्ट्र है। ''राजृ दीप्तौ'' धातु से भाव में या कर्ता में ष्ट्रन् प्रत्यय करने से राष्ट्र शब्द की निष्पत्ति होती है। यहाँ धातु का अर्थ पूर्ण शोभा है। शोभा भी एक दीप्ति है। शोभा की पूर्णता ज्ञान से होती है। रमणी की शोभा प्रेम से पूरी होती है। प्रेम की पूर्णता अबाधित सर्वपक्षीय ज्ञान से होती है। उसी से पातिव्रत्य को बल मिलता है। ऐसे ही किसी भी देश की जनता का उत्कर्ष उसके अनुष्ठानपर्यवसायी यथार्थ ज्ञान से होता है। बल, वैभव, शासन, शक्ति, सौन्दर्य आदि गुण उक्त ज्ञान पर ही अवलम्बित होते हैं। अपने सर्वविध उत्कर्षों के लिए शीलसम्पन्न महापुरुषों के उपदेशों का श्रद्धापूर्वक परिशीलन, आहरण, आचरण, स्थायीकरण आदि व्यापारों का सातत्य ही उक्त शोभा है।

जब हम किसी देश को राष्ट्र कहते हैं तो उसमें उक्त शोभा की कल्पना करते हैं। हर एक देश राष्ट्र कहलाने का भागी नहीं होता। अच्छी संस्कृति से पोषित आदर्श शासन होने पर ही राष्ट्रसंज्ञा होती है। इसके अभाव में भी यदि कोई देश, राष्ट्र कहा जाता है तो उसे हम लाक्षणिक या औपचारिक प्रयोग कहेंगे। समानता की झूठी कल्पना में पड़ा मानव अपनी सहज अच्छाइयों को भूला रहता है और उन्हें बढ़ाने की दिशा में कुछ भी कर्त्तव्य नहीं कर पाता। आत्मविकास का एक ही मार्ग है राष्ट्रिय आदर्श महापुरुषों के गुण शील चरित्रों का स्मरण अनुकथन और उनको अपने जीवन में उतारने के प्रयत्न। जैसे कुशल चिकित्सक सभी रोगों में

सब दवायें देना नहीं चाहता वैसे ही विवेकशील व्यक्ति सभी भूखण्डों को समान व्यवहार के उपयुक्त नहीं समझता। प्रत्येक भूखण्ड में जन्म लेने वाले का स्वभाव दूसरे से भिन्न होता है। जन्मभूमि से अपने सम्बन्ध का क्रियापर्यवसायी बोध ही राष्ट्रियता है। यह बोध प्रत्येक देशवासी के हृदय में कुछ न कुछ रहता है। कुछ लोग अज्ञानवश इस बोध से वञ्चित रहते हैं। परराष्ट्रिय दुष्प्रभाव में पड़ कर वे स्वराष्ट्र-विरोधी क्रियाकलाप में लिप्त हो जाते हैं। भय और लोभ के वशीभूत वे अपने को नाश के लिए भी प्रस्तुत करते हुए अपने ही राष्ट्र के विनाश के काम करने लगते हैं।

राष्ट्र में रहने वाला व्यक्ति यदि राष्ट्र से जुड़ा नहीं है तो परराष्ट्र के भेदिये उसे आसानी से राष्ट्रघाती बना सकते हैं। उसके द्वारा राष्ट्र की बड़ी से बड़ी हानि हो सकती है। इससे प्रजा को राष्ट्र के उक्त पाँच घटकों से दृढ़ता से जोड़े रहना आवश्यक होता है। जिस क्षेत्र में कभी किसी सिद्ध योगी या साधक को ईश्वरीय बोध हुआ होता है वह क्षेत्र पवित्र होता है। वहाँ के निवासी पवित्र होते हैं। उनके शुभ आचरण अनुकरणीय होते हैं। उनकी परम्परा की रक्षा शुभ कर्तव्य और विनाश अपराध होता है। ऐसी विश्वव्यापी मान्यता ही राष्ट्रियता है।

हमारे वेदों स्मृतियों इतिहास-पुराणों और आधुनिक इतिहास ग्रन्थों में राष्ट्रियता के पोषक हजारों सन्दर्भ हैं। उनका संकलन व्याख्यान और विश्लेषण हो। विद्यालय में ऐसी पुस्तकें पाठ्य हों। विश्व में वास्तव राष्ट्र भारत ही है। अन्यदेश गौण राष्ट्र हैं। उनकी संस्कृति और सभ्यता अर्वाचीन है, अवैज्ञानिक है, अप्रामाणिक है, आदर्श नहीं है। उससे आत्यन्तिक कल्याण सम्भव नहीं है।

आज की जेहादी जुनून से जख्मी जगत् में उक्त तथ्यों का प्रचार-प्रसार इस भूमिका से होना चाहिए कि भारत का प्रत्येक नागरिक मानने के लिए बाध्य तो हो ही, साथ में दूसरे देशों के नागरिक भी उक्त तथ्यों को हृदय से मानने लग जायें।

तात्त्विक शिक्षा से वञ्चित, क्षुद्र स्वार्थ भावना से ग्रस्त आाधुनिक भारतीय राजनेता भारतीय प्राचीन वैज्ञानिक वर्णव्यवस्था पर विदेशी आक्षेपों से दिङ्मूढ़ होकर वर्ण जाति भेदों पर स्वयम् पर्दा डालने लगे हैं और इस

आावश्यक एवं कल्याणकारी मान्यता को विकास में बाधक मानने लगे हैं। उन्हें यह सोचना चाहिए कि विकृत जेहादी भावना भारत के कोने-कोने से खटमल की भाँति क्यों निकलने लगी है और कैसे उत्तरोत्तर फैल रही है। हिंसा अन्धी होकर चारों ओर क्यों दौड़ रही है। क्यों आदमी किसी भी दूसरे को धोखे में मारकर स्वयं स्वर्ग पहुँचने की गलत कल्पना में जीने लगा है।

उत्तर एक ही है अपने जाति गुण-स्वभावों और कर्तव्यों को ठीक से न समझ पाना, जीवन के उद्देश्यों को, दम्भियों की ट्रेनिंग स्कूल में केवल सुनकर, भय और लोभ के वशीभूत होकर गलत रूप में मानने लगना एवम् प्रशिक्षित जंगली पशुओं की भाँति केवल खलों के इशारे पर नाचते रहने के लिए बाध्यता। संक्षेप में चाहें तो कह सकते हैं धर्महीन उपेक्षित प्रजा के चित्तमृगों का परव्याघ्रों के द्वारा भक्षण। जीवन के उद्देश्यों से प्रजा का उदासीन रहना भी अशान्ति हिंसा आदि अनेक अनर्थों का कारण बनता है। राष्ट्रिय शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जिससे प्रजा अपने पुरुषार्थ चतुष्टय-धर्म अर्थ काम मोक्ष पर निष्ठा रखती रहे। मोक्षनिष्ठ व्यक्ति ही वास्तव धर्मनिष्ठ होता है और धर्मनिष्ठ को ही अर्थकाम उपलब्ध होते हैं। पीठ पर सोना लदा होने पर भी गधा धनवान् नहीं होता, ऐसे ही धर्मनिष्ठा के अभाव में धन रहते भी मनुष्य सुखी नहीं हो पाता। सर्वसाधारण के गले उतारने के लिए इस विषय पर तर्क प्रमाण युक्त सरस ललित विस्तृत निबन्ध लिखा जाये और उसे पाठ्यग्रन्थ बनाया जाये।

किसी कृत्य में कर्ता अपने आप को दृढ़ता से समझता है। चोर अपने को चोर मानकर चलता है ऐसे ही अपने जाति गुण धर्म समझ कर ही कोई अपना कर्तव्य करता है और अपेक्षित दृष्ट और अदृष्ट फल प्राप्त करता है। किसी न किसी रूप में जातियों और वर्णों की कल्पना विदेशों में भी है जिनका मूल आधार प्राचीन और वर्तमान कर्म हैं। अपने और समाज के विशेषों को झुठलाते रहने के बजाय उन्हें एक चिकित्सक के द्वारा रोगों की भाँति लगातार समझते हुए उनमें वास्तव सुधार लाने के लिए प्रयत्न जारी रखना अधिक कल्याणकारी होता है। घर के अन्दर के साँप को निकाल बाहर करना या उसका विष निकाल देना सभी चाहते हैं और घर के किसी भी शिशु की मेधा प्रतिभा को विकसित करने का प्रयास

करना भी सभी चाहते हैं। इस चाह का ही परिणाम आज राष्ट्रिय माने जाने वाले भीमराव अम्बेडकर हैं। उन्होंने जातियों के बारे बौद्ध दृष्टि अपनायी। वह दृष्टि सबके लिए कल्याणकारी है। बौद्धों ने एक सांवृतिक सत्य माना है, हमारे मायावादी दार्शनिक उसे ही व्यावहारिक कहते हैं। उसे अम्बेडकर ने कितना समझा यह ज्ञात नहीं है। कुछ लोग कहते हैं कि उन्होंने हिन्दू धर्म छोड़कर बौद्धधर्म अपना लिया। आज भी बहुत लोग हिन्दू धर्म छोड़ कर बौद्धधर्म अपनाते देखे जाते हैं। यह छोड़ना और अपनाना खेलों में पाली बदलने से अधिक कुछ नहीं है। हिन्दू बौद्ध, हिन्दू मुसलमान, हिन्दू ईसाई, हिन्दू सिक्ख ये सारे भेद शाब्दिक हैं। अर्थगत भेद के अभाव में शाब्दिक भेद कभी-कभी खतरा बन जाता है। खेलों में पाली बदलने के बाद छोड़ी गयी पाली को बुरी तरह पछाड़ना ही कर्तव्य रह जाता है। यदि कोई व्यक्ति या समाज धर्मबदल कर दूसरों की हिंसा शुरु करता है और हिंसा को ही अपना अपनाया हुआ धर्म मानता है तो वह वास्तव में धर्म का त्याग कर धोखे में अधर्म अपना लेता है। उससे समाज को चाहे जो भी हानि हो किन्तु उसका तो वह धार्मिक पतन होता है जहाँ से फिर उत्थान सम्भव नहीं रह जाता। यह ईश्वरीय माया की अपार महिमा है कि आज विश्व की बहुत बड़ी आबादी धर्म विरुद्ध हिंसा को स्वर्ग का द्वार मान रही है। यह मान्यता प्राचीन घोर अपराधों का आत्यन्तिक विनाशकारी दुष्परिणाम है। दुर्बुद्धि मानव ही दानव बनता है। सद्बुद्धि के लिए सत्कर्मनिष्ठा अपेक्षित है। उसके लिए अपने आप को सांवृतिक और पारमार्थिक दोनों रूपों में समझते रहना अनिवार्य है। कर्मों का त्याग चाहे बौद्ध दृष्टि से हो या मायावादी दृष्टि से हो या आलस्य प्रमाद अशक्ति आदि दोषों से हो वह पतन का ही एक मात्र कारण है। नैष्कर्म्य मानव की बहुत बड़ी भूमिका है। उसे प्राप्त करने के लिए कुछ लोग सम्पाती का अनुगमन करके उसके जैसे बेकार होकर रह जाते हैं।

कोई भी व्यक्ति समझ सकता है कि सत्कर्मों का त्याग अपने आप को आंशिक या पूरा झुठलाने से होता है तब उस जीवन में हिंसा वैसे ही घुस आती है जैसे प्रकाश के अभाव में अन्धकार आता है। भारतीय धार्मिक बहुत से आख्यान ऐसे हैं जिनमें धार्मिक जीवन में अधर्म के घुसने और

पतन तथा विनाश की घटनाओं का वर्णन है। धर्म में अधर्म वैसे ही घुस आता है जैसे किसी लहलहाते सुन्दर पौधे में रोग के कीड़े लगकर उसका विनाश शुरु करते हैं। बीज के दोष से ही वे कीड़े लगते हैं और पौधे का जीवन बर्बाद करते हैं। ऐसे ही दूषित बीज से उत्पन्न पुरुष धर्म करते-करते अधर्म के गड्ढे में गिर पड़ता है तब वह रोजा सहित नमाजों को भूल जाता है और कोई बड़ा हत्या काण्ड करने के लिए खुद मर जाता है। तब उसके समान अपराधी तत्त्व बोलने लगते हैं कि देखो वह जन्नत पहुँच गया। चलो हम भी जन्नत को चलें यहाँ कब तक रोजा और नमाज अदा करते रहेंगे। तब वे भी जन्नत की ओर दौड़ लगाते हैं और फतिंगों की भाँति जन्नत पहुँचते रहते हैं। कितनी अच्छी धर्म निष्ठा है इनकी ? हम उन्हें क्या कहें जो किसी सभ्य राष्ट्र के नायक माने जाते हैं और इस तरह जन्नत को दिन रात दोजख बनाने पर तुले रहते हैं।

इस पर भारतीय सेक्युलर बन्धु कहेंगे कि यह सब तो धर्मान्धता है। ऐसी वाहियात बातों पर हम कभी भी अपना दिमाग नहीं खपाते। धर्म मानना ही मानवता का विनाश है। धर्म से अलग हटकर शुद्ध मानव जीवन अपनाने के पक्ष में हम रहते हैं। किन्तु ये बन्धु तब ज्यादा व्याकुल देखे जाते हैं जब दूसरे लोग जन्नतियों को जन्नत भेजने लग जाते हैं। तब नहीं कहते कि हम धर्मान्धों की चर्चा नहीं करते। बास्तव में सेक्युलर समूह से ही निकल कर छट कर ऐसे जन्नती बनते हैं जो दुनिया में तबाही मचाते रहते हैं। धर्म छोड़ने वाले सेक्युलर कहे जाते हैं। धर्म के अभाव में अधर्म अपने आप आ जाता है। इससे इन्हें पापी भी कहा जा सकता है। ये कहेंगे कि हम पुण्य और पाप के बीच में रहते हैं किन्तु इनसे पूछने के बजाय इनके क्रिया कलाप देखकर इन्हें समुचित स्थान और अधिकार दे देना उचित होगा। शिक्षा और अशिक्षा के बीच रहकर कुछ युवक बी० ए० एम० ए० पी० एच० डी० आचार्य, विद्यावारिधि होकर बड़े-बड़े पद पा गये और रिटायर भी हो गये। वे सब इन सेक्युलरों की ही सन्तान हैं। इन्हें सेक्युलरों के पूर्वज भी कहा जा सकता है। अशिक्षा से विशेष हानि नहीं होती, कुशिक्षा सभी छोटे-बड़े अनर्थों की जड़ है।

किसी भी होनहार राष्ट्र को ऐसी शिक्षा की अपेक्षा होती है जिससे

उसमें सेक्युलर या कम्यूनिष्ट जैसी अर्थहीन संज्ञायें लिए राष्ट्रविरोधियों की तादाद बढ़ने न पाये। ये केवल हिंसात्मक मनोवृत्तियाँ पालते हैं। इनसे रक्षा या विकास की दिशा में चिन्तन नहीं हो पाता। समाज को धर्मशील बनाने की आवश्यकता है। रक्षात्मकता ही धर्मशीलता है। जिससे रक्षा और विकास न हो रहा हो वह धर्म नहीं है चाहे वह धर्म के जितने भी लक्षण ओढ़े हो। वास्तव शिक्षा वह होती है जिसे पाकर व्यक्ति अपना और राष्ट्र का भौतिक सांस्कृतिक एवं नैतिक विकास करने में श्रद्धा रुचि और तत्परता लिये स्वतन्त्र प्रगति कर रहा हो, एवं समाजविरोधियों को पाताल की ओर ऐसे भेज रहा हो जैसे शरद् ऋतु प्रकाश और शीत से समझौता करके पानी में घुली मिट्टी को धीरे-धीरे मिट्टी पकड़ा देती है। आज की नीतिहीन भारतीय शिक्षा केवल रिश्वतखोर, क्लर्क और वैसे ही उच्च पदाधिकारी और मन्त्री तैयार करके राष्ट्र को सीधे विनाशकी ओर ले जा रही है। अधर्म से समझौता ही इस शिक्षा का बड़ा दोष है। अनुपचारित संस्कारहीन दुर्बल बीज से उत्पन्न पौधा ही जवानी में रोगों से समझौता करके मर जाता है। ऐसे ही कुसंस्कारी बीज से जन्मा व्यक्ति भी विकास के उपयुक्त अवसर में स्वयं और समाज को भी बिनाश के गर्त में ढकेल देता है।

उत्तम मानव-बीज सत्कर्मशुभ्र सद्भावधारावाही शरीर में तैयार होते हैं। बास्तवसमर्पणप्रधान विवाहविधि का एवम् आधानकालिक तथा गर्भकालिक मानसिकता का पूरा प्रभाव सन्तान पर पड़ता है। समाज के प्रति उत्तरदायित्व की भावना भारतीय आदर्शयुक्त दम्पति की सन्तान में ही सम्भव होती है। समझौतावादी दम्पति की सन्तान में व्यवहार कुशलता तो हो सकती है किन्तु उसमें धार्मिकता या नैतिकता की उपलब्धि कठिन होगी। पैशाच तथा राक्षसविधि से प्राप्त नारी की सन्तान में अच्छे गुण सम्भव नहीं हैं। यदि उसमें शौर्य होगा तो वह अधर्मयुद्ध में ही काम आयेगा। धर्मयुद्ध उसे नहीं रुचेगा।

भारत में जन्में बहुत लोग अभी अनैतिक, अशिष्ट विश्वासघाती और राष्ट्रद्रोही देखे जा रहे हैं। ये लोग माता पिता के मानस दोष लेकर जन्मे हैं। समझौतावादी दाम्पत्य वाले देशों में साधु-सन्त परोपकारी श्रेष्ठ वैज्ञानिक

साहसी राष्ट्रभक्त मिलते हैं। निश्चय ही उनके माता पिता श्रेष्ठ गुणों से विभूषित रहे हैं। उनका आपसी समझौता समर्पण प्रधान और निश्चल रहा है। विशेषकर उनकी माता शीलवती होगी। इस तथ्य को दरसाने वाले दृष्टान्तभूत आधार संकलित करके पाठ्य ग्रन्थों में जोड़े जायें तो निश्चय ही समाज पर गुणात्मक प्रभाव होगा।

वर्णव्यवस्था जन्म से या कर्म से मानी जाये ऐसा प्रश्न उठा कर समाज को गुमराह करते रहने के बजाय यह व्यावहारिक प्रचार विशेष लाभकारी होगा कि कर्म ही मानव की पहचान बनता है। कर्म से ही उसका वर्णन होता है इससे कर्म ही उसका वर्ण होता है। कर्म के अभाव में वर्ण जाति सम्प्रदाय कल्पना अतीत या आगामी कर्म योग्यता के भरोसे से होती है। नित्य अकर्मण्य व्यक्ति में जाति की कल्पना सादृश्यमूलक गौण होती है। कर्मों को कर्ता के उद्देश्यों से जोड़ कर देखने से पता चलेगा कि स्वतन्त्रता संग्राम के समय भारत में अज्ञानियों की संख्या अधिक थी और अब स्वतन्त्रता मिलने पर शिक्षा का विकास होने से बेईमानों की संख्या बढ़ी है। अज्ञान और बेईमानी मानस कर्म हैं। इससे अज्ञानी और बेईमान दो जातियाँ हुईं। हत्या के प्रशिक्षण से हत्यारे पैदा होते हैं। वे अपने को पाक साबित करने के लिए जेहादी या साम्यवादी कहते हैं। उक्त तीन जातियाँ आज बहुसंख्यक हैं। शेष जो दो चार बचती होंगी वे अल्पसंख्यक होंगी। उनका ही आरक्षण होना चाहिए। तभी राष्ट्र का हित सम्भव है। कानून बदलने होंगे या कुछ नये कानून बनाने होंगे।

आज के नरव्याघ्रों के विश्वव्यापी जेहादी पंजों ने विश्वमानव पर एक निष्पक्ष प्रामाणिक शोधपूर्ण निबन्ध और दृष्टि बनाने की आवश्यकता प्रस्तुत की है। अब पुराने जाति वर्ण मजहब और पन्थों से मानव का निरूपण व्यर्थ हो रहा है। मानव बहुत बदल चुका है। इसे आत्मघात का शौक बढ़ता जा रहा है। विधायिका में, संसद् में और मुख्यमन्त्री, प्रधानमन्त्री, राज्यपाल और राष्ट्रपति की कुर्सियों पर भी राष्ट्रद्रोही आत्मघाती चेहरे मिलने लगे हैं। वर्तमान मानव धर्म से और नीति से अपना नाता तोड़ चुका है। दूसरों को बर्बाद करने के लिए स्वयं बर्बाद होने का शौक बढ़ता जा रहा है। अच्छी बात खलती है। आत्मघाती बातें प्यारी लगती हैं। रक्षक

शत्रु मालुम पड़ते हैं। सहज शत्रु इष्टदेव का दर्जा पा रहा है। आदर्शों से नफरत बढ़ रही है। विनाश और पतन का मार्ग राजमार्ग लग रहा है। मौत के शौकीनों की तादाद ज्यादा हो गयी है इससे रक्षा के उपाय दुर्घट हो रहे हैं।

कतिपय शीलवान् दृढ़निश्चयी आत्मविश्वासी महापुरुष यदि एक हो सकें और सुधार के लिए कोई लम्बी योजना बन सके एवं वह दृढ़ता से लम्बे समय तक क्रियान्वित रहे तो सुधार सम्भव है। किसी भी देश का युवावर्ग जितना ही शीलवान् और रचनात्मक एवं रक्षात्मक सोच वाला होगा उसकी अगली पीढ़ी उतना ही खुशहाल, सुखी और शान्त होगी, उससे पहली पीढ़ी को भी अच्छी सन्तुष्टि मिलेगी। अच्छी शिक्षा से ही यह सम्भव है। आजकल समस्त विश्व के शिक्षातन्त्र में आतंक घुस गया है। कुछ राष्ट्र आतंक का ही प्रशिक्षण देने लगे हैं। उन्हें अस्त्रशस्त्र वेचने की चिन्ता है। इससे वे आतंकी माहौल में अपना बाजार बना रहे हैं। वे अपने अस्त्र शस्त्रों की विक्री के लिये मूढ़ योजनाबद्ध उपायों से सारे विश्व में आतंकी माहौल बढ़ाते जा रहे हैं। राष्ट्रियता से विमुख प्रमादी मानवता उनकी गतिविधियों को भाँप नहीं पाती बल्कि उनसे ही शान्ति के उपाय चाहती है। वे ऐसे पढ़े हैं कि रक्षात्मक विकासात्मक और आत्मकल्याणात्मक बात सोच ही नहीं पाते। गोमांस खा खाकर वे व्याघ्र बने हुए हैं। सूबर के मांस ने उनके विवेक की जड़ खोद डाली है। फिर भी धनवान् मृदुभाषी होने से वे सभ्य माने जाते हैं। वे जिस किसी देश को अपना शिकार मान लेते हैं उसके पक्ष में कभी भी अन्दर से सहानुभूति नहीं रखते। वहाँ की जनता की सहायता में वे बाढ़ भूकम्प महामारी जैसे अवसरों पर धन देकर अपनी गणना धर्मशीलों में करा लेते हैं जब कि वे नित्य निःशील होते हैं। वे स्वयं दुःखों के घेरे में होते हैं। दुःख पहुँचाना उनका धर्म होता है। उनसे दुःख दूर होने की कल्पना व्यर्थ होती है। राष्ट्रों के ध्वंस की योजना बनाने में लीन व्यक्ति या समाज से रक्षा या विकास के कार्य कैसे पूरे हो सकते हैं।

शिक्षा का शील और संयम से घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। इन दोनों के अभाव में शिक्षा का फल उलटा होता है। गन्ने के रस से बहुत कुछ उत्तम निर्माण होता है। किन्तु रख छोड़ने से वह बुद्धि को बिगाड़ने वाली शराब

हो जाता है। इस्लामी कुशासन से पहले भारत आदर्श शिक्षा का केन्द्र था। यहाँ दूर दूर से आकर लोग अपने पसन्द की उच्चशिक्षायें प्राप्त करके कृतार्थ होते थे और प्रत्यक्षरूप से भारत को विश्वगुरु मानते थे। आगे चलकर भारतीय प्रजा का पापपुञ्ज दूर के आततायियों में घोर ईर्ष्या बनकर चिरानुवर्ती द्रोहाग्नि के रूप में बदल गया। शिक्षातन्त्र के सारे तार नष्ट हो गये। तब जो शिक्षा जारी हुई उसका नाम हुआ मदरस या मदरसाः। कितना अच्छा नाम है। यथा नाम तथा गुणाः। मदरस की धारायें देश में बहुत जगहों पर बह रही हैं किन्तु अभी प्रचुरता है विडालाक्षी शिक्षा की। बिडाल की आँखों में सदा दम्भ स्वार्थ और हिंसा का भाव प्रवाहित रहता है। शिक्षक पढ़ाते नहीं, छात्र पढ़ते नहीं। दोनों का जीवन अनैतिक है। परीक्षा के समय दोनों अपनी-अपनी अनैतिकता निभाते हैं। परीक्षक भी अनैतिक शिक्षक हुआ करते हैं। उनकी अनैतिकता परीक्षाफल को दूषित करती है। युवक गलत परीक्षाफल लिये नये महान् अनैतिकों की तलाश करता रहता है। सौभाग्य से उसे कोई रिश्वत का दलाल मिल जाता है तब उसे वेतन उठाने के लिए नियुक्तिपत्र मिल जाता है। आगे हरएक मासिक वेतन के लिए वह कई जगह रिश्वत देता रहता है। वह रिश्वत लेना भी सीख लेता है। पद से सम्बन्धित कर्तव्य वह केवल रिश्वत पाने के लिए करता है। रिश्वत न मिलने की स्थिति में वह कर्तव्य को छूता ही नहीं। यही है वर्तमान बिड़ालाक्षी भारतीय शिक्षातन्त्र वृक्ष का खुशबूदार फूल और मीठा फल। इससे देश की जो प्रगति हो रही है वह सर्व विदित है। सेक्युलरवादियों ने एक दायित्व ले रखा है कि देश में कहीं भी धर्म की बू न रह जाये। कर्तव्य और प्रगति से उन्हें कोई सरोकार नहीं है। किसी भी सरकार के सभी मोर्चों पर विफल रहने की घोषणा वे भाँड़ों की भाषा में कभी भी कर सकते हैं। भाँड़ पैसे लेकर लौट जाते हैं पर ये तो जान लेकर भी नहीं लौटते। ये हैं आत्मोत्सर्ग के पुजारी। इनकी धर्मनिरपेक्षता इन्हें जीवननिरपेक्ष भी बना देती है। धर्म के अभाव में जीवन का कोई महत्त्व रहता भी नहीं।

यह सारी मानसिक दुरवस्थायें कुशिक्षा से बनती हैं। विश्व में ऐसी कोई राष्ट्रिय शिक्षा नहीं है जिसमें अच्छे विचारों का विरोध सिखलाया जाता हो। फिर भी अचछे विचार व्यापक रूप से रौंदे जा रहे हैं। कारण

यह है कि एक सुनियोजित कुशिक्षा केवल अनैतिक अमान्य संगठनों के द्वारा चुने हुए कुपात्रों को दी जाती है। गुरुमंत्र की तरह गुप्त अनैतिकता अपनी प्रतिष्ठा कायम रखने के लिए नैतिकबलों पर संगठित प्रहार करती रहती है। इसका वारण शिक्षा से ही सम्भव है। नालन्दा तक्षशिला की प्राचीन विश्वमान्य शिक्षापद्धति अभी वापस नहीं आ पायेगी। शिक्षा में अनैतिकता के साथ कायरता भी घुसी हुई है। पहले के समाज हितैषी राष्ट्रिय निष्ठा वाले विद्यानिष्ठ आचार्य आज उपलब्ध नहीं हैं। वैसे आचार्य राष्ट्र में चिर प्रयोगों से उपलब्ध करने होंगे। इसके लिए सैनिक प्रशिक्षण को तर्ज पर सांस्कृतिक प्रशिक्षण चलाने होंगे जिससे शास्त्रग्रन्थों पर श्रद्धा उत्पन्न हो। ऐसे विद्वान् तैयार करने होंगे जो नव्यन्याय जैसी भाषा स्वयं लिख सकें। एवम् ब्रह्मसिद्धि नैष्कर्म्यसिद्धि इष्ट सिद्धि तत्त्वप्रदीपिका सिद्धित्रय विशिष्टाद्वैतसिद्धि शतदूषणी अधिकरण सारावली तत्त्वमुक्ताकलाप, वेदान्तवादावली जैसे ग्रन्थों को आसानी से समझ सकें, समझा सकें। इन ग्रन्थों के आधार पर बादविवाद चला सकें। उनमें वास्तव राष्ट्रहित की भावना हो जिससे बादविवादों से दम्भ दर्प दुरभिमानों की वृद्धि न हो। तत्त्वनिरूपणप्रधान तत्त्वसंग्रह न्यायबिन्दु प्रमाणवार्तिक जैसे बौद्धदर्शन के ग्रन्थों का भी अध्ययन मनन मन्थन राष्ट्रहित के लिए जारी रखा जाये। भारतीय संसद में मतदान से प्रस्ताव पास होते और गिरते हैं। सांसदों को मत परीक्षायें भी चलानी चाहिए। परीक्षायें प्राचीन उस कथाशैली से चलायी जायें जिसमें बाद जल्प और वितण्डा के स्पष्ट रूप देखे जा सकें। विद्या में कठोर श्रम से ही यह सब सम्भव है। केवल क्रिकेट के खिलाड़ियों से राष्ट्र की प्रतिष्ठा नहीं बचेगी। राष्ट्र को समस्त विश्व में प्रतिष्ठित करने के लिए उस संस्कृतभाषा शैली का व्यापक प्रचार करना होगा जो दार्शनिक वादविवाद के लिए एकमात्र माध्यम है जो आज कम्प्यूटर की भाषा भी कही जा रही है।

जिसमें दर्शन और प्रमाणों का पुट न हो, जिसमें तत्त्वों की पकड़ न हो, जो दम्भों की पोल न खोल पाती हो वह भाषा नशेबाजों की भाषा से विलक्षण नहीं होती। आजकल भारतीय समाचार पत्रों में ऐसी ही अर्थहीन भाषाओं का बाहुल्य है। ऐसी भाषा से समाज कोई ठोस प्रेरणा नहीं ले पाता, उसके मानसिक दोष बढ़ते ही रहते हैं। साम्प्रदायिक दंगे होते हैं। वे

दंगे शासन से बाहर बैठकर सियारों से प्रतीक्षारत नेताओं के लिए वरदान बनते हैं। जब देश में शिक्षातन्त्र स्वयम् मूर्खता फैला रहा हो तो दंगे न हों तो क्या योगसाधना होगी ?

राष्ट्र की रक्षा और विकास के लिए राष्ट्रिय शिक्षातन्त्र में सम्पूर्ण नैतिकता की प्रतिष्ठा पहली शर्त है। परीक्षाओं में नकल की जगह पर अकल प्रतिष्ठित हो और कृपांक तथा आरक्षण जैसी कुप्रथायें शीघ्र दूर की जायें।

आज के सभी भारतीय राजनेताओं को सबसे पहले यह समझ लेना चाहिए कि वे सबके सब अनैतिकता और अराजकता के किसी एक ही तोप के निशाने पर बेखबर बैठे हैं। संसद पर का हमला विफल नहीं हुआ है। उनकी प्यारी अनैतिकता जागरूक है। वह कभी भी कुछ भी कर गुजारने पर तुली हुई है। उन्होंने राष्ट्रिय शिक्षातन्त्र के विशाल प्रांगण में जो विगत ५० (पचास वर्षों) से दुर्भावविषवृक्षों की लम्बी कतार पाल रखी है वह उन्हें एक साथ अपनी छाया में समाहित कर लेने में सक्षम हो चुकी है। अपने किए कर्म उपयुक्त समय पर अपने सम्पूर्ण फलों से लाद ही देते हैं। ''कर्मणः फलमस्तीति विस्मर्तव्यं न कर्हिचित्।''

आज अनैतिकता का ही दूसरा नाम नेता हो गया है। यह निबन्ध किसी अनैतिक को रिझाने के लिए नहीं लिखा गया है। इसे वे पढ़ें जो राष्ट्र के प्रति वास्तव में समर्पित हैं। जिन्हें अपने ऋषिमुनियों की कल्याणमयी वाणियों में किसी प्रकार के सुधार की अपेक्षा न हो बल्कि उन्हें हृदयंगम करके स्वयं को कृतार्थ करके राष्ट्र को वास्तव कल्याण की दिशा में चलाने की श्रद्धा हो। जिन्हें अपने चित्त गगन से विषयवासना का धुन्ध मिटा कर उसमें दैवी प्रज्ञा का आलोक फैलाने की एकमात्र इच्छा हो। शुभमस्तु।

श्वेत हयों वाले रथ में सारथी पार्थ के,
आजायेंगे शीघ्र नहीं हैं कभी वे थके।
पार्थ ढूंढ़िये, जहाँ पड़ा हो उसे लाइये,
दुर्योधन बन मनमोदक मत और खाइये।।

भाग–2

भूमि, उसकी प्रजा मानव एवम् उसके सहयोगी जन्तु, मानव की संस्कृति, इतिहास और शासन तन्त्र, इन पाँच का एक नाम है राष्ट्र। व्यक्ति को अपनी राष्ट्रियता सुनिश्चित करने के लिए उक्त पाँच से अपने विविध ा सम्बन्धों का आकलन आवश्यक होता है। अतः छात्रों को इन पाँचों का विशद बोध होना चाहिए। जिससे वे अपनी एवम् पड़ोसी की राष्ट्रियता में अन्तर कर सकें। इसके लिए स्वतन्त्र पाँच पुस्तकें होंगी। उनके नाम होंगे-१-भूमि और उसकी पहचान, २-मानव और अमानव, ३-मानव की संस्कृति, ४-विश्वमानव का इतिहास, ५-शासनतन्त्र के आदर्श और व्यावहारिक रूप (आर्ष दृष्टि और पुरातत्त्वों की उपलब्धियों का सामञ्जस्य रखते हुए)

प्रथम पुस्तक का विषयक्रम निम्न हो सकता है-

१- रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, एवं तापमान के उतार चढ़ाव के भेद से भूमि के विभिन्न प्रभाव-१०० पृष्ठ

सहायक ग्रन्थ-वृहत्संहिता, वास्तुशास्त्र, प्राणिशास्त्र, वृक्षायुर्वेद, इतिहास और लोगों के अनुभव। (कुछ वृक्षों और कुछ प्राणियों का होना और न होना मानव प्रकृति में अन्तर बतलाता है-कृष्ण सारस्तु चरति मृगो यत्र स्वभावतः। सज्ञेयो यज्ञियो देशो म्लेच्छदेशस्त्वतः परः (मनु०)

२- भूमिभेद से मानव स्वभाव में भेद-५० पृष्ठ

सहायक ग्रन्थ, काव्यभीमांसा, अनुभव

३- भूमिभेद से शासन पद्धति में भेद ५० पृष्ठ

सहायक ग्रन्ध-आधारभूत इतिहासों के सन्दर्भ

४- भारतवर्ष के विभिन्न क्षेत्रों के विभिन्न स्वभाव और प्रभाव २०० पृष्ठ (सर्वेक्षण के आधार पर)

५- भारत और अन्य देशों की भूमि, जनता पर उसके विभिन्न प्रभाव एवं शील में अन्तर १०० पृष्ठ (अनुभव तथा सर्वेक्षण के आधारपर)

६- देशभेद से शिक्षा की रूपरेखा में अपेक्षित अन्तर ५० पृष्ठ

(काव्यमीमांसा अनुभव, इतिहास और सर्वेक्षण के आधार पर)

७- मानवीय चरित्र और शील का भूमि पर प्रभाव ५० पृष्ठ
(संकलित अनुभव पर)

८- भूमि की नैसर्गिक शुद्धि और अशुद्धि २५ पृष्ठ
(मिट्टी की विशेषता, अनुभव, इतिहास के आधार पर)

९- भूमि से सम्बन्धित भावनायें-२५ पृष्ठ
(संकलित रोमांचक अनुभवों के आधार पर)
महाभारत युद्धोचितभूमिकी तलाश की गयी थी

१०- हम भूमि को कैसे अच्छी बनायें २५ पृष्ठ
(चरित्र और शील से) नमाज वाली भूमि शुद्ध हो जाती है इस आशय के वचन भारतीय ग्रन्थों में ढूँढ़ें।

११- भूमि से हम कैसे अच्छे बनें २५ पृष्ठ
इसमें वृहत्संहिता, वास्तुशास्त्र एवं यथासम्भव आर्ष ग्रन्थों से भी सहायता ली जानी चाहिए।

दूसरी पुस्तक मानव और अमानव का विषयक्रम निम्न हो सकता है-

१- मानव के सामान्य स्वभाव २० पृ०,

२- मानव के विशेष स्वभाव ४० पृ०

३- मानव के सहायक अमानव ६० पृ०, ४-जातियों का आरम्भ ह्रास और नाश २० पृ०

५- जाति वर्ण और उनकी संख्या २० पृ०, ६-आरक्षण से विकास और नाश २० पृ०

७- योग्यता और अधिकार २० पृ०, ८-अयोग्यों को मिले पदों से हानियाँ २० पृ०

९- चरित्र निर्माण २० पृ०, १०-शीलनिर्माण २० पृ०

११- शारीरिक मानसिक शक्तियों के सुधार और विकास के उपाय २५पृ०

१२- आतंकियों की सृष्टि, उनका विकास, उनकी चर्यायें, हानिलाभ ५०पृ०

१३- देशों के और विश्व के भविष्य की साधार कल्पनायें ३० पृ०

१४- हम क्या कर सकते हैं, क्या रोक सकते हैं, क्या सुधार सकते हैं। इतिहास और मनोविज्ञान से क्या क्या लाभ उठा सकते हैं १५० पृ०

कल्पित तीसरी पाठय पुस्तक-संस्कृति संकलन की रूप रेखा

हिन्दी भाषा और साहित्य में संस्कृति शब्द बहुतायत से चलता है। हमारे मन में कर्मों और भोगों का ज्ञानात्मक एक संस्कार होता है, वही संस्कृति है। जो लोग जन्मान्तर तक नहीं सोच पाते वे संस्कृति को अति सीमित रूप में अनसुलझे कई सवालों के घेरे में लेते हैं किन्तु जो लोग जीवन की अतीत और आगामी अनन्त जन्मों की दूरियों तक ध्यान रखते हैं वे आसानी से सारे सवाल हल कर लेते हैं। हर जन्तु का जातीय और व्यक्तिगत एक निसर्ग होता है। जन्म के बाद वह निसर्ग बाहरी निमित्तों से बनता बिगड़ता रहता है। कुछ लोग उन बाहरी निमित्तों के प्रभावों को ही संस्कृति कहते हैं जब कि व्यक्ति की संस्कृति गर्भ से ही होती है। गर्भ में माता-पिता आदि से जो कुछ मिलता है वह अपने समय में अमिट होता हुआ भी बाहरी निमित्त जैसा ही आगन्तुक और नाशवान् होता है।

जातक के निजी संस्कार उसके भावी कर्मों और भोगों को नियन्त्रित करते हैं, वे कई जन्मों से उससे लगे रहते हैं, वे ही उसका व्यक्तित्व बनाते हैं। किन्तु उसके वे पिछले संस्कार भी अनादि न होकर किन्हीं बाहरी निमित्तों से आये होते हैं और मिटते भी रहते हैं। ऐसी स्थिति में आत्मा के समान एकरूप एकाकार अनादि कोई तत्त्व नहीं होता। अकेला ही वह अनादि आत्मतत्त्व अपने अर्जित कर्मों के सहारे कुछ संस्कारों से जुटता और छूटता रहता है। यही उसका संसारबन्धन है जो कर्मबन्धन भी कहा जाता है। वास्तव में संस्कृति किसी प्राणी की वह अवस्था है जो अपने समय में अमिट सी लगती है। जैसे कोई व्यक्ति बचपन से ही जहाँ भी कोई गाय देखता है वहाँ उसे प्रणाम करके ही आगे बढ़ता है, यह उसकी संस्कृति है। दूसरा व्यक्ति जहाँ भी कोई तन्दुरुस्त गाय देखता है वहाँ वह

उसे किसी युक्ति से काट कर खाने की सोचता है और मौका मिलने पर चूकता नहीं। यह उसकी विरोधी संस्कृति है। बाघ गाय के खून और मांस का सदा भूखा होता है जब कि एक गाय दूसरी को बड़े प्रेम से चाटती, दुलारती है। यह दो विरोधी संस्कृतियाँ हैं, दोनों कुछ कर्म करा कर और कुछ भोग देकर प्राणों के साथ या पहले भी मिट जाती हैं।

कल्पना कीजिए कि कुछ यात्रियों का दल कहीं पहुँचा, वहाँ कुछ लोगों ने उनके ठहरने, खाने, पीने में निःशुल्क व सशुल्क कुछ सहायता पहुँचायी, कुछ आगे बढ़ने पर दूसरों ने उन्हें लूट लिया। लुटकर आगे बढ़ने पर आगे बालों ने कई को मार डाला और कच्चा खा गये। यहाँ निःशुल्क सहायता पहुँचाने वाले, सशुल्क सहायता पहुँचाने वाले, लूटने वाले और मारकर कच्चा खाने वाले चारों वर्ग हाथ पैर वाले जन्तु होने से मानव कहे जायेंगे किन्तु चारों की संस्कृतियाँ बहुत भिन्न हैं इसी तरह जिन्होंने निःशुल्क सहायता ली और जिन्होंने लेना नहीं चाहा, एवं सशुल्क भी सहायता लेने और न लेने वाले, मारे जाने वाले और बचने वाले भी बारह चौदह प्रकार के हुए जो अपनी-अपनी अलग संस्कृतियों से जाने गये। ये सब ढांचे से मानव तो हैं किन्तु संस्कृति से एक नहीं हैं।

विवाहादि सम्बन्ध, समाज सेवा, वाणिज्य, शासनव्यवस्था एवम् अन्य व्यवहारों के लिये विभिन्न संस्कृतियों की जानकारी आवश्यक होती है, जानकारी के अभाव में बड़े भी धोखे हो जाते हैं। संस्कृतियाँ ही सारे व्यवहारों का मूल होती हैं। यदि हम किसी भी प्रयोजन से, वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रिय या अन्तरराष्ट्रिय सम्पर्क साधना चाहते हैं तो प्रयोजनों के अनुरूप व्यक्ति से लेकर अन्तर्राष्ट्रिय तक विभिन्न संस्कृतियों का गहराई से अध्ययन भी कर लेना चाहिए, अन्यथा धोखा होगा। दैववश हम धोखे से बच भी सकते हैं किन्तु हमारी पहचान तो दूसरों की दृष्टि में नासमझी की ही होगी और हम उन पुरुषार्थों से वञ्चित ही रह जायेंगे जिनके हम अर्ह हैं। तो आइये, विभिन्न अवस्थाओं से गुजरने वाली विभिन्न जातियों की समग्र संस्कृतियों का अध्ययन करें जो कि सिनेमा के पर्दों की भाँति कुछ कालतक रहकर कुछ दृश्यों का माध्यम बनकर लुप्त हो जाती हैं। पहले भारत से शुरु करें।

भारत को सबसे प्राचीन राष्ट्र माना गया है। मानते है कि विश्वसृष्टि यहीं से शुरु हुई है। भारतीय नामगोत्र सत्ययुगीय ऋषिमुनियों के नामों से बने हैं। त्रेता के रघु हमारे चिरस्मरणीय हैं हजारों नाम रघु और राघव से हैं। यदु यादब बलराम कृष्ण नामों से तो सारा देश ही भरा है। युगभेद से प्राणियों की प्रकृति बदलती है। अब वे मानव नहीं मिलेंगे जो द्वापर युग जैसी प्रज्ञा और सामर्थ्य रखते हों, फिर भी भारतीय मानव वही मानते, चाहते, करना चाहते और करते हैं जो सत्ययुग से द्वापरयुग तक के लोग मानते, चाहते, करते थे। हम उन सभी आदर्श मान्यताओं को वैदिक कह सकते हैं। किन्तु विश्वकी जो अवैदिक कहलाने वाली मान्यतायें हैं उनके भी मूल उन पुराने युगों के लोगों में रहे हैं। वैदिक संस्कृति ही लोगों के द्वारा स्वगत कारणों से जब अधूरी ली जाती है तो वह दूसरा नाम ले लेती है, कुछ नये रूप भी निखार लेती है। समग्र मानव संस्कृति एक ही है, अध ूरी संस्कृतियों की संख्या हमारो समझ से परे है। पेड़ की डाल लीजिए, उसे छड़ी बनाइये, किसी झण्डे का डण्डा बनाइये, दतवन बनाबये, कोई छोटी बड़ी कील बनाइये किन्तु हैं वह सब उस पेड़ की ही डाल। उनकी सारी पहचान उस पेड़ में ही छिपी है। छोटी बड़ी सारी डालें पेड़ की ही होती हैं। ऐसे ही विश्व की सारी मान्यतायें जो आज उपलब्ध नहीं हैं और जो हैं वह सब वेदों में ही हैं। संस्कृत वाङ्मय में गहरे गोते लगाकर हम उन्हें पा सकते हैं। संस्कृत का अच्छा ज्ञान न होने तक कोई अपनी अलग संस्कृति मान सकता है। इसके लिए वह वेदादि शास्त्रों ग्रन्थों को जला सकता है, विद्वानों की हत्या कर सकता है, सूरज को धूल फेंक कर ढक सकता है, चाँद को धरती का गेंद बना सकता है। कुछ लोग ऐसे धन्धे कर चुके हैं, आगे भी करते ही रहेंगे। चूहों को पुस्तक काटने से कोई रोक नहीं पाया है, फिर भी पुस्तकें हैं।

भारतीय संस्कृति वैदिक होती हुई भी नानात्मक है। वेद उदारता से स्वयं नाना चिन्तन प्रस्तुत करता है। इसके अतिरिक्त अधूरे चिन्तन वाले नाना आगम भी भारत में अति प्राचीन काल से प्रचलित रहे हैं जिनसे नाना मत पन्थ विभाजित हुए। भारत एक ऐसी भूमि भी है जहाँ नवीन चिन्तन लिए नये नये मनीषी होते ही रहते हैं। एक बात यह भी है कि भारत में मानव की हजारों अलग-अलग जातियाँ भी है जो लक्षणों से,

कर्मों से, शारीरिक बनाबट से भी पहचानी जाती हैं। यद्यपि जातिभेद अन्य देशों में भी हैं, किन्तु उनकी संख्या वहाँ कम है और उनमें अन्तर भी कम है। यहाँ तो आदिवासी गीत गाते हैं-बाम्हन, रजपूत कोल, मेसा, कहु पण्डित कवन उपदेसा। ब्राह्मण के बावन बुद्धि, छतरी के छत्तिस बुद्धि, कोल के भेल मन में अन्देसा, कहु पण्डित कवन उपदेसा। गीत का सारांश है कि ब्राह्मण राजपूत और कोल की मानसिक संरचना आपस में इतनी विलक्षण है कि कोई भी दो जातियाँ विश्वासपूर्वक देर तक नहीं मिल सकतीं। आपस में भिन्न संस्कार ही विभिन्न संस्कृतियाँ होती हैं।

भारत में धर्म या दर्शन का ऐसा कोई कठोर व्यापक बन्धन नहीं रहा है जिससे नये विचार अपनाये न जा सकें। अपवाद-स्वरूप कहीं-कहीं कुछ बन्धन अवश्य रहे हैं किन्तु वे देर तक प्रभावी नहीं रहे। जैसे वेद उदार है वैसे वेदभूमि भारत की जनता भी उदार है। यहाँ सारे मत पन्थ सहज भाव से मान्य हैं। यहाँ के लोग स्वभाव से ही अपने मत पन्थ और धर्म या दर्शन को दूसरों से मिलता मानना पसन्द करते हैं। यहाँ किसी मत पन्थ धर्म दर्शन के अपनाने या छोड़ने पर दण्ड नहीं दिया जाता। दृष्टिभेद यहाँ के लिए केवल मनोरञ्जन का साधन बन कर रह जाता है। इस देश की यह सहज उदारता दूसरों की देखादेखी उदासीनता बन कर धर्मनिरपेक्षता बन गयी है जो अनेक अनर्थ दे रही है। यहाँ शुभ अशुभ, हित अहित, सत्य असत्य का विभाजन और उत्तम पक्ष के परिग्रह के शास्त्रीय ठोस उपाय हैं जो उच्च्व स्तरीय शीलवान् मनीषियों के ही अधीन लोभमय दम्भ की होते हैं। खिड़की से घुसी उक्त धर्मनिरपेक्षता उन मूल्यवान् उपायों पर अनास्था जमा कर जनता को जड़ता से मिलाती रहती है।

संकीर्ण धारणा वाले विदेशी इसी तथ्य पर उंगली उठाया करते हैं और इसी की आड़ में निम्न सांस्कृतिक स्तर की जनता का हृदय चुराया करते हैं एवम् इसी चोरी के द्वारा दूसरे देशों पर अपना कब्जा मानते हैं। वे अपनी धारणा की संकीर्णता और अनुपयोगिता पर ध्यान नहीं देते। उनका आनुवंशिक आहार-विहार और परिवेश कुछ ऐसा है जो उन्हें भारत जैसी उदारता से सदा दूर रखता है। संस्कृतियों में अधर्म अंश भी रहता है। उसका त्याग चाहा जाता है। विवेकपूर्वक उसके त्याग का सुझाव ध र्मग्रन्थों में प्रचुरता से उपलब्ध है। अशिक्षा विवेक को रोकती है और जब

शासन तन्त्र ही अविवेकग्रस्त रहता है तब अधर्मांश जारी रहता है, तब विकास रुकता है और हिंसा बढ़ती है।

संस्कृतियों का अध्ययन धर्म के दर्पण में होना चाहिए। इस आशय का सुझाव भी धर्मग्रन्थों में बहुतायत से है। अविवेक इस तथ्य को छू नहीं पाता। और जब शासन स्वयं निर्लज्ज होकर धर्मनिरपेक्षता का ढोल पीटता रहता है तब उस ढोल की ध्वनि के अनुपात से कुछ बढ़ कर ही खून बहता है। धर्म का पृष्ठभाग अधर्म होता है। धर्म रक्षा करता है और अध ार्म विनाश। धर्म का मूल आधार होता है तत्त्व दर्शन और अधर्म का उत्तरोत्तर अविवेक। संस्कृति के अन्दर ये दोनों रहते हैं। अधर्मांश युक्त ध ार्म को प्रवृत्तिमार्ग कहते हैं और वही सत्त्वगुण की वृद्धि से विवेक पाकर समग्र तत्त्वनिष्ठा पा लेता है तब निवृत्तिमार्ग कहा जाता है। यह उभयविध ा धर्म भारतीय धर्मग्रन्थों में ही उपलब्ध है, कुछ भारतीय आचरणों में भी लक्षित होता है। दूसरे देशों में भी इनका अन्वेषण होना चाहिए।

विश्वसंस्कृति का अध्ययन वैयक्तिक या राष्ट्रिय औपाधिक शत्रुता और परस्पर अविश्वास में कमी और मैत्रीभाव की वृद्धि लाने में सहायक होता है। संस्कृति का अध्ययन सभ्यता से पूर्व की स्थिति से होना चाहिए। पूर्व की अवस्था के हिंसाभाव में तारतम्य अध्ययन का प्रथम बिन्दु होगा। विश्व के बहुत से मानव पशुतुल्य नंगे और परिग्रहमय सभ्यता से बहुत दूर हैं। उनमें सभ्यता लायी जाती है। शिक्षा से लायी हुई सभ्यता ही उनकी संस्कृति होती है। सभ्यता में हिंसावृत्ति छिपायी जाती है। छिपी दबी हिंसावृत्ति परिग्रह बढ़ने पर तानाशाही वृत्ति लाती है। वहाँ धर्म नहीं होता। ऐसे सभ्य लोग जंगली असभ्यों से ज्यादा खतरनाक होते हैं। वे योजनाबद्ध व्यापक हिंसा फैलाते हैं। उनकी दिखावटी सभ्यता और संस्कृति हिंसा का ही पोषण करती है। विश्व का हिंसामय अतीत और वर्तमान इसी तथ्य का विस्तृत विवरण है। ऐसे बने हुए सभ्यों को यदि दयामूलक धर्म का कोई उपदेश मिलता है तो वे उस धर्म को भी अपनी हिंसावृत्ति और तानाशाही का अंश बना लेते हैं। क्योंकि उनमें दया होती ही नहीं। दया के बिना कोई धर्म नहीं होता।

किन्तु सर्वथा दयादीन कोई जीव नहीं होता। हर जीव दयानिधान

परमात्मा का अंश है। महाक्रूर माना जाने वाले को भी किसी-किसी पर कभी दया होती ही है। उस अल्प दया को उपायों से बढ़ाया जा सकता है। ऐसा होता भी है, सफलता कम और देर से मिलती है। संस्कृति में उतार चढ़ाव होता रहता है। संस्कृति चूंकि अन्तःकरण गत अनुभवों की सूक्ष्मावस्था होती है और उसके मूल जातीय तथा जन्मान्तरीय कर्मसंस्कार होते हैं जो अपने भोग देकर ही छूटते हैं, इससे किसी भी प्रशिक्षण से किसी व्यक्ति या जाति को एकदम नहीं बदला जा सकता। उसमें कुछ थोड़ा ही परिवर्तन लाया जा सकता है। संस्कृतियों में जातीय और जन्मान्तरीय मौलिक भेद रहते ही हैं। बन्दर भालू आदि जंगली पशुओं और शुक सारिका आदि पक्षियों को प्रशिक्षण के बाद भी मानवीय क्षमता नहीं मिलती। इसीसे संस्कृति का अध्ययन जातीय भेंदों को ध्यान में रखकर ही किया जा सकता है। किसी के जन्मान्तर का पता हमें नहीं होता। यह केवल कार्यों से समझा जा सकता है एवं कुछ सूक्ष्म जातियाँ भी पकड़ में नहीं आतीं, इससे यह मानना पड़ेगा कि संस्कृति का अध्ययन पूर्णरूप से सम्भव नहीं है। हम किसी व्यक्ति को देर तक देख कर भी नहीं समझ पाते कि यह व्यक्ति आगे चलकर अपने जातीय या व्यक्तिगत स्वभाव से क्या-क्या कर सकता है। फिर भी व्यवहारनिर्वाह के लिए यथासम्भव संस्कारों का अध्ययन करना ही पड़ता है। किसान गाय, बैल खरीदते समय उनके स्वभाव और उपयोगिता की परीक्षा कुशल व्यक्ति से करा लेते हैं।

संस्कृति के पन्द्रह पहचान केन्द्र

किसी भी व्यक्ति जाति या समाज की संस्कृति की परीक्षा आकृति चेष्टा परिधान परिग्रह परिवेश व्यवहार सामाजिकता वाणी सामूहिक कृत्य यौनसम्बन्ध शिक्षा दृष्टनिष्ठा और अदृष्ट निष्ठा इन पन्द्रह पहलुओं से होती है। इन्हें हम पहचान केन्द्र कहेंगे। क्योंकि इनसे संस्कृति के बहुत से पक्ष यथा समय प्रकट होते रहते हैं। एक-एक का विवरण लें।

आकृति-चेहरे एवम् अन्य अंगों की यदि कोई जातीय बनावट समझी जाये तो उससे सामुद्रिक नियमों से जातीय भावना का पता चलेगा, व्यक्तिगत बनावट से व्यक्ति की भावनायें जानी जाती हैं। भावनायें ही संस्कृति हैं। चेष्टा-बैल की चाल और भैंसे की चाल में बहुत अन्तर देखा

जाता है। सभी जातियों की गतिविधियों में अन्तर लक्षित होता है, उससे भावना का अन्तर भी लक्षित होता है। सब की व्यक्तिगत चेष्टाओं में अन्तर भी लक्षित होता है। उनसे हम उनकी भावनायें समझ सकते हैं। कोई दो व्यक्ति अपरिचित बोली में कुछ चर्चा करते चल रहे हों तो हम पीछे से उनकी कण्ठध्वनि और सिर आदि अंगों के कम्प से उनकी भावनाओं को बहुत कुछ जान सकते हैं। किसी व्यक्ति को भोजन करते दूर से देख उसके ग्रास उठाने चबाने आदि भोजन सम्बन्धी और आनुषंगिक अन्य चेष्टाओं से उसकी भावनायें जानी जा सकती हैं। परिधान-परिधान से, उसकी बनावट से, सजावट से, उसके प्रति सम्हालने की या उपेक्षा की प्रवृत्तियों से भावनायें लक्षित होती हैं। परिग्रह-परिग्रह में वे सारी वस्तुएँ और व्यक्ति आ जाते हैं जिन्हें कोई अपना मानकर अपने संरक्षण में रखता है। उससे उसके भावनात्मक विकास का पता चलता है। इसी में स्त्रियों और पुरुषों के सम्बन्धों में बहुलता और विरलता से मर्यादा निष्ठा का अन्दाज लगता है।

परिवेश-परिवेश में व्यक्ति के देश का तापमान, ऋतुएँ, जल का स्वाद आहार, आत्मीयजन और उसकी अभिमत एवं उसे प्रभावित करने वाली नीतियाँ आती हैं। ये सब उसके स्वभाव में अपने प्रभाव डालते हैं। व्यवहार-व्यवहार में यह देखा जाता है कि अमुक व्यक्ति दूसरों से बातचीत और लेन देन में कितनी सच्चाई बरतता है एवं दूसरे उसके साथ कितनी सच्चाई बरतते हैं। सच्चाई की कमी के अनुपात से व्यक्ति के चित्त में दुर्गुणों का जमाव होता है। सामाजिकता-व्यक्ति जिस समाज में रहता है उससे उसका लगाव जितना रहता है उतना ही उसमें रहने वाले शुभ-अशुभ भाव उसे मिलते हैं। समाज से लगाव ही सामाजिकता है। उसी से समाज के गुण दोषों की कल्पना व्यक्ति में होती है। वाणी-कुछ लोग बात-बात पर गन्दे शब्दों का प्रयोग करते हैं और कुछ लोग बड़ी ही शालीन भाषा बोलते हैं। अधिकांश लोगों की भाषा सामान्य होती है। प्रथम कोटि के लोग अच्छी मनःस्थिति नहीं बना सकते। दूसरी कोटि के लोग थोड़ा भी अपना अपकर्ष नहीं सह सकते। उन्हें किसी ओर मोड़ने के लिए विशेष आदरभाव बनाये रखना पड़ता है। इस नीति में अंग्रेज अच्छे रहे हैं। मध्यम स्तर के लोगों को कुछ देर तक किसी भी ओर मोड़ा जा सकता है। अनुकूल बातावरण

मिलने पर देरतक भी वे उस ओर मुड़े रह सकते हैं। उन पर भय या लोभ का कोई भी दबाव आसानी से डाला जा सकता है। यही उनकी संस्कृति होती है। वाणी-इसके अन्दर एक अनेक भाषाओं का ज्ञान, उनका प्रयोग, शब्द भण्डार, उससे व्यावहारिक भावना की विशदता और संकीर्णता का ज्ञान भी सम्मिलित है। पश्चिमी लोग इस विषय के मर्मज्ञ होते हैं। इससे वे बहुत लाभ भी उठाते हैं। सामूहिक कृत्य-दशहरा, दीवाली, बसन्तपञ्चमी जैसे धार्मिक रामनवमी, कृष्णजन्माष्टमी, हनुमत् जयन्ती, या रैदास जयन्ती जैसे स्मारक, बसन्तोत्सव, शारदोत्सव जैसे ऋतु सम्बन्धी नाना प्रकार के कृत्य सभी देशों में न्यूनाधिक होते हैं। मनुष्य उत्सव चाहता है। उसमें नाचगान, खानपान, मित्र बन्धुओं को बुलाना, उन्हें सम्मानित करना होता है। इनमें कुछ कथा पूजा उपदेश आदि धर्मकार्य भी होते हैं। इन अवसरों पर कुछ निहित स्वार्थी लोग धर्म के बहाने धन उगाह कर कुछ खर्च करतें और कुछ अपने जेब में भरते हैं या किसी दूसरे प्रकार के स्वार्थ में लगाते हैं। इन गतिविधियों से लोगों की मनःस्थिति का पता चलता है। आजकल विहार और झारखण्ड में सरस्वती पूजा के नाम पर दस पन्द्रह गुण्डे इकट्ठे होकर दूकानों, होटलों, गाड़ी के ड्राइवरों, गृहस्थों, पैदल, साइकिल, मोटरसाईकिल वाले यात्रियों से भय दिखा कर या प्रताड़ित करके धन लूटते हैं और विशाल जुलूस निकालकर शराब पी कर ट्रक पर अपना नाच गान प्रदर्शित करते एवं बचे धन से विस्फोटक सामग्री तैयार करके दुबारा समाज को लूटते और हत्या करते रहते हैं। यू.पी. के कतिपय भागों में भी ऐसा देखा जा रहा है। सरकार इन पर नियन्त्रण नहीं कर पाती। इनके पीछे सांसदों, मन्त्रियों, विधायकों का वरदहस्त रहता है। ऐसी गतिविधियाँ विश्व में न्यूनाधिक शुद्ध अशुद्ध रूप में सभी देशों में होती हैं। उनसे समाज की और शासन की मनःस्थिति का पता चलता है। वही वहाँ की वर्तमान संस्कृति होती है जो तत्काल सुधारने योग्य होती हुई भी क्लीब शासनतन्त्र के सहारे वर्षों और युगों तक चलती रहती है।

यौनसम्बन्ध-भारत में आदर्श (ब्राह्म) विवाह की प्रथा रही है। अभी भी बहुत अंशों में है। विवाह की उत्तमता पर ही उत्तम सन्तान, उत्तम नागरिकता, उत्तम समाज और उत्तम शासन तन्त्र का अस्तित्व निर्भर

करता है। स्त्रियों के गर्भकालिक मानसिक दोषों का प्रभाव सन्तान पर पूरा पड़ता है। दूषित सन्तान का बाहुल्य होने पर शासनतन्त्र हिंसक व लुटेरा होता है और जल्दी ही उसका विनाश हो जाता है। एक शुद्ध ओजस्वी मानव राष्ट्रपिता होता है। एक करोड़ दूषितचित्त क्लीव मानव केवल गन्दे कीड़े होते हैं। इससे विवाह की शुद्धि पर सारे विश्व का ध्यान जाना चाहिए। शीलवान् दम्पति की ही सन्तान शीलयुक्त होती है। इससे सारे विश्व को शीलसंग्रह पर ध्यान देना चाहिए। घृणित मांस और सुरा का सेवन शील का नाश करता है। रणक्षेत्र में उसकी कुछ उपयोगिता मानी गयी है। विश्व के मूल तत्त्व के अनुरूप अर्जित ज्ञान के अभ्यास से होने वाला सत्कर्मनिर्वाहक संस्कार शील कहा जाता है।

शिक्षा–भारत की शिक्षा मुस्लिम शासनकाल में नगण्य थी और अंग्रेजी शासनकाल में योग्य क्लर्क बनाने वाली थी और अब स्वाधीन भारत में बहुत धन हजम करती हुई भी वह शून्य बन कर पूरे देश को घेरने पर तुली है। आज कुञ्जियों ने पाठ्यग्रन्थों का दर्जा ले रखा है। मास्टर ट्यूटर हो गये हैं। कुञ्जियाँ भी परीक्षा के बाद रद्दी में न बिक कर नालियों में सड़ती हैं। सांसदों व विधायकों के पत्र कोई कर्मचारी लिखता है। वे लिखना भूल चुके हैं, साईन मारना जानते हैं। भारत देश स्वतन्त्र है, भेड़ की तरह विनाशमय, दलदल भरे कुएँ में डूबने के लिए। देश व्यापी आतंकी गतिविधियाँ वही दलदल का गहरा गन्दा कुआँ है। किसी भी देश की शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जिससे नागरिकों में अपने राष्ट्र के प्रति दायित्व और जागरूकता वैसी बनी रहे जैसे गाय में अपने नये बछड़ें के प्रति होती है। ऐसा न होने से ही अमेरिका में कभी न भूलने लायक भीषण हवाई विस्फोट पिछले वर्ष हो गये थे। राष्ट्र के प्रति प्रमाद योगी के अपने स्वरूप के प्रति प्रमाद से कम घातक नहीं होता। पश्चिमी राष्ट्र अपनी घातक मनोवृत्ति का त्याग कर एवं विश्वरक्षात्मक मैत्रीपूर्ण नीति अपना कर एवं विश्वमाता गौ की पूजा तथा घृणित शील वाले सूवर का त्याग एवं मादक पदार्थों के निर्माण और सेवन का त्याग शुरु करके ही शिक्षातन्त्र में सुधार और सुदृढ़ राष्ट्र की कल्पना कर सकते हैं। ऐसा तभी सम्भव होगा जब दूसरा कोई ईसा अवतार ले और शुद्ध मैत्रीभरी अहिंसा का पाठ पढ़ाये। अतीत ईसाने ''जीवों जीवस्य जीवनम्'' को विधिवाक्यकी तरह समझा समझाया जब कि

वह दृष्ट अर्थों का अनुवादमात्र है। बुद्ध की विकृत अहिंसा ही ईसा को मिली थी। जैन सम्प्रदाय की अहिंसा परमार्थ और व्यवहार में सामञ्जस्य न बना कर सर्वत्र सप्तभंगीवाद चलाती है जो राजनीति को गुमराह कर सकती है। गान्धीवादी अहिंसा हिंसाविरुद्ध श्रद्धाप्रधान अपने चमकीले सिंहासन वर्णाश्रममर्यादा की चकाचौध से ऐसे भड़की कि परमार्थनीति तथा धर्मनीति से तो हटी ही राजनीति की लीक से भी हट कर स्वाधीनता के लिए हजार वर्षों से लड़ रहे भारत के मस्तक पर म्लेच्छों को बैठा दिया। म्लेच्छों का शासन कभी भी प्रजा के हित में नहीं हो सकता। वे सही वाणी नहीं पकड़ पाते। इसी से क्रूर हिंसा में विचरते हैं। उनमें मानवता प्रतिष्ठित नहीं होती। वे सदा ही किसी तेजस्वी शासन में जीने के योग्य होते हैं। इतिहास ने उनमें क्रूरता दम्भ कपट आदि तो प्रमाणित किये हैं किन्तु रक्षात्मक राजनीतिकौशल नहीं प्रमाणित किया है। चिरन्तन भारतीय प्रज्ञा का महान् आलम्बन वर्णाश्रममर्यादा ही वास्तव अहिंसा और समग्र राजतन्त्र की प्रतिष्ठा है। इस तथ्य को आर्य दयानन्द सरस्वती ने समझकर समग्र विश्व में प्रचारित करना चाहा था किन्तु उनकी चाह को चेलों ने जन्मगत वर्णव्यवस्था के विरोध की परिधि में बन्द कर दिया। उपाय अपाय बन कर रह गया। राष्ट्रियतापूर्ण शिक्षा से संस्कृति विकसित होती है और उदासीन शिक्षा दोषों को बढ़ाकर संस्कार नष्ट कर देती है, इससे शिक्षा की चारुता पर विशद चिन्तन और उसका उपयोग होना चाहिए।

दृष्टनिष्ठा–लोगों की कहीं न कहीं श्रद्धा होती है। श्रद्धा का पात्र व्यक्ति अपने जिन साहस पराक्रम उदारता सेवा आदि भावों से लोगों का दिल जीतता है वे भाव यदि प्रत्यक्ष तुल्य रहे हों तो वह श्रद्धा दृष्टनिष्ठा कही जायेगी। देखना चाहिए कि जिस गुण और प्रभाव पर व्यक्ति या समाज की श्रद्धा है वह किस स्तर का है। श्रद्धेय के स्तर से ही श्रद्धावान् की मानसिक संरचना जानी जाती है। वही उसकी संस्कृति होती है।

अदृष्टनिष्ठा–अदृष्टनिष्ठा धर्मनिष्ठा का पर्याय हो सकती है। किसी भूत, प्रेत, पिशाच, देवता, वृक्ष, पर्वत आदि पर लोगों की जो श्रद्धा होती है उसका निर्वाहक ज्ञान ही उनकी संस्कृति होती है, जानना चाहिए कि इनका श्रद्धास्पद अदृष्ट अर्थ किस स्तर का है और उस पर उनकी भावना किस स्तर की है। वह भावना ईश्वर को किस अंश तक छूती है।

राष्ट्रिय संस्कृति

भूमि जन संस्कृति इतिहास और शासनतन्त्र ये राष्ट्र के पाँच अंग हैं। या कहें कि संगठित इन पाँचों का एक नाम राष्ट्र है। यहाँ संस्कृतिपद से उत्तम स्वभाव और इतिहासपद से उत्कर्ष सूचक इतिहास विवक्षित है। इसी तरह शासनतन्त्र पद से प्रजा के गुणधर्मों की रक्षा और विकास करने वाला शासनतन्त्र विवक्षित है। इससे परायी भूमि या बलपूर्वक अधिगृहीत भूमि का स्वतः त्याग हो जाता है। क्योंकि उस पर चलने वाला शासन रक्षक या विकासकारक नहीं होता। ऐसे ही भूमि पर श्रद्धा न रखने वाले बाहरी लोगों का भी त्याग स्वतः होगा, क्योंकि वे लोग न तो वास्तव शासक हो सकते न वास्तव प्रजा। ऐसे लोगों को आदर्श शासन या तो सुधार कर रखता है या विधिवत् वापस कर देता है। प्रथम चार अंग शासनतन्त्र के घटक होते हैं इससे उन चारों की पुष्टि और सामञ्जस्य से शासनतन्त्र बलिष्ठ होता है।

संस्कृति के पूर्वोक्त पन्द्रह पहलू राष्ट्रिय फलभेद से चार वर्गों में विभक्त होते हैं। सक्रिय राष्ट्रविरोधी, उदासीन राष्ट्रविरोधी, उदासीन राष्ट्र घटक और सक्रिय राष्ट्रघटक। ज्ञान के तारतम्य से ये चारवर्ग हो जाते हैं। रजोगुण के अधीन अज्ञानपोषक तम सदा विध्वंस सोचता है। उसका माना समझा धर्म भी उसके जानते नृशंस हिंसा ही होता है। ऐसे लोग अपनी समग्र संस्कृतियों का उपयोग विध्वंस में ही करते हैं। उस विध्वंस से यदि राष्ट्र प्रभावित होता है तो वे अपनी अधूरी संस्कृति से सक्रिय राष्ट्रविरोधी कहे जायेंगे। सक्षम अच्छा शासन ऐसे लोगों को आर्थिक सामाजिक प्रगतियों से वञ्चित रखता हुआ अच्छा बोध प्राप्त कराने के चिर प्रयत्न करता है। उन्हें कभी अच्छा बोध नहीं होता, किन्तु स्वार्थमय दम्भ से कभी-कभी वे लोग अपने को आदर्श दिखला कर प्रगति करते और फिर अपने स्वभाव से राष्ट्रविरोधी गतिविधियों में लिप्त हो जाते हैं। घर के

लड़के भी घर को बिगाड़ते हुए स्वयं बर्बाद हो जाते हैं। उग्रवादी मानसिकता वाले ऐसे लोगों को थोड़ा पीछे रखते हुए ही आगे बढ़ाया जा सकता है।

रजोगुण की कमी से तमोमय अज्ञान उग्र हिंसा का रूप नहीं ले पाता किन्तु किसी भी रचनात्मक सोच को अपने हृदय में स्थान भी नहीं दे पाता। ऐसे पशु प्राय लोगों से ही सारा विश्व भरा पड़ा है। ऐसे लोग उग्रवादियों के पक्ष में ही रहना और चलना पसन्द करते हैं। इससे सहारा न मिलने तक अपनी अधूरी संस्कृति से ये उदासीन राष्ट्र विरोधी रहते हैं। अच्छा शासनतन्त्र उग्रवाद से इन्हें वैसे ही बचाता है जैसे समझदार व्यक्ति अपनी सूखी लकड़ी को आग से बचाता है। इस वर्ग के लोगों को साम दान सुशिक्षा आदि उपायों से राष्ट्रियता से जोड़े रहने की वैसे ही आवश्यकता होती है जैसे बैलों को रस्सी से। समानता के राग में भूला शासन ऐसे लोगों की हरकतों से असमय बिखरता रहता है। पशु पार्टी कहती है कि हमें अपने अस्तित्व के लिये दो पायों की आवश्यकता नहीं है, किन्तु जंगलों में भी इनका अस्तित्व दो पायों के अधीन ही होता है। सत्त्व आदि गुणों के तारतम्य से मानवता वँटी ही रहती है।

तमोगुण के अधीन रहने वाला सत्वगुण अपने स्वभाव से ही राष्ट्ररक्षा का पक्षधर होता है किन्तु तम उसे सदा दिशाहीन रखता है, इससे इस वर्ग के लोग बातें अच्छी कर लेते हैं किन्तु रजोगुण का सहारा न मिलने से कोई रचनात्मक या रक्षात्मक योजना नहीं बना पाते। इससे इन्हें उदासीन राष्ट्रघटक कहा जा सकता है। ये लोग स्वार्थ की दिशा में सक्रिय होते हैं। स्वार्थभावना ही इन्हें गति देती है। बिना स्वार्थ के ये लोग पंगु होते हैं। इनमें जातीय सामाजिक धार्मिक या राष्ट्रिय कोई भी रक्षात्मक या रचनात्मक छोटी या बड़ी योजना स्वार्थ के अभाव में विफल होती है। समाज में आजकल सक्रिय जितने लोग अच्छे माने जा रहे हैं वे इस तीसरे वर्ग के ही सदस्य हैं। साधु संन्यासी योगी यति पण्डित समाजसेवी धर्मात्मा उद्योगपति दानी आदि नाम रूपों से सुशोभित लोगों में भी बहुतायत से ये ही विराजमान हैं। स्वार्थ के लिये ही ये किसी मत पन्थ सिद्धान्त परम्परा और सामयिक पक्ष विपक्ष का भी ग्रहण करते हैं। जिधर स्वार्थ देखते हैं

उधर ही अपने मन्द विवेक को भी जोत देते हैं। अपना अपना क्षुद्र स्वार्थ छूटने के भय से ये लोग ईश्वरीय कल्याणमय धर्ममय नीति संगत पथ से थोड़ी दूरी बनाये रखते हुए लोकनिपुण माने जाते हैं। समग्र विश्व के सारे शासनतन्त्र आज इनके ही हाथों में हैं। परमार्थसे सदा कतराने वाली इनकी वाणी प्रगल्भ होकर जब कभी परमार्थ को छूती है तो किसी स्वार्थ को लक्ष्य कर ही। स्वार्थ के खिसकते ही इनकी वाणी अस्त हो जाती है। राष्ट्ररक्षा विश्व का सबसे महान् मंगलमय कर्म है। किसी सिद्धयोगी की साधना से यह तनिक भी कम नहीं है। योगी को मिलने वाला फल सत्त्वनिष्ठ राष्ट्रिय महापुरुष को पहले मिल सकता है। यह सूक्ष्म तथ्य स्वार्थमयी स्थूल दृष्टि की पकड़ से सदा दूर रहता है। देखा जाता है, गोभक्षी भी गोपालन करते हैं ऐसे ही आज सर्वत्र देखा जा रहा है कि वेतन लेकर लोग राष्ट्र सेवा कर रहे हैं और मंहगाई भत्ते के तौर पर वेतन से करोड़ गुना काला धन बटोर रहे हैं। इन्हीं महाभागों के लिए इनके पूर्वज स्वतन्त्रता संग्राम की अग्नि में अपना सर्वस्व होम करते हैं। विदेशीदस्यु प्राय और वञ्चक शासक भारतदेश के अहित में चिरकाल तक जो नहीं कर पाये वह ये लोग मिनटों में करते हैं। कितने प्रवीण हैं ये दुर्दिशा की अपनी दुर्दशा में।

अस्तु, चौथे वर्ग सक्रिय राष्ट्रघटक को भी समझ लें। यह वर्ग माता के गर्भ से बहुत कम ही जन्म लेता है। इस वर्ग का उपमान अभी ध्यान में नहीं आ रहा। यह किसी पुण्यशील गुरुकुल की किसी कक्षा से किसी सुनहले मुहूर्त में जन्म लेता है। यह मौन ही अकेले लाखों का नेतृत्व करता है। क्रिया ही इसकी वाणी होती है। यह सत्प्रज्ञा का अक्षय निधि होता हुआ शौर्य वेष्टित उत्साह की लौह प्रतिमा होता है। इसे कुछ करने का ही ध्यान रहता है। क्रिया का कोई फल यह नहीं चाहता, वायु की तरह, सूर्य की तरह, सागर की तरंगों की तरह। विघ्नों की इसे परवाह नहीं होती, विघ्न स्वयं इससे दूर रहते हैं, प्रकाश से तम की भाँति। यह सहयोगी नहीं ढूंढ़ता, लोग इसके पीछे सदैव वैसे ही चलते हैं जैसे सूर्यमण्डल की परिक्रमा उसके आकर्षण वाले सारे पिण्ड करते हैं। हमें अपने देश के लिए ऐसे केवल एक महापुरुष की आवश्यकता है। एक समय था जब देवताओं को सेनापति की आवश्यकता थी, ऐसा सेनापति जो स्कन्द हो यानी शत्रुवाहिनी पर उत्तरोत्तर बढ़ता ही जाये। उन्होंने देखा कि हमारा सेनापति शिववीर्य में

यानी मंगलमय पौरुष में छिपा है। उन्होंने शिव को प्रसन्न किया निष्ठापूर्वक चिरकालिक शुभ कर्मों से। तब भी बहुत नुकसान उठाकर अनेक विघ्नमयी प्रक्रियाओं से अपना स्कन्द सेना नायक पाया। तब आसुरी शक्तियों पर वे विजय पाये।

आज भारत ही नहीं, सारा विश्व आसुरी शक्तियों से त्रस्त है। अभी पीड़ित और आतंकी का वास्तव भेद नहीं है। आतंकी माने जाने वाले लोग ज्यादा ही पीड़ित हैं। वे तो बलि पशु बनकर ही जन्म ले रहे हैं। पृथ्वी का भार बढ़ रहा है, कोई भीषण संहार होने वाला है। विश्व के आतंकी अपने ही पापों से अपने ही हाथों एक साथ मरेंगे। उनका घातक प्रशिक्षण उन्हें ही निगल जायेगा। आतंक का पोषण करने वाले बड़े लोग नंगे होकर भीख मांगेंगे। प्रकृति किसी को कभी क्षमा नहीं करती। प्रत्येक कृत्य का फल देती रहती है। अज्ञानियों की नहीं चलेगी। ज्ञानमय दयामय उत्साह शौर्यसहित दृढ़ आत्मविश्वास से पूर्ण ईश्वरीयधर्ममूलक राजनीति ही विश्व में चिरस्थायी होकर प्रजा की रक्षा करेगी।

भारतीय बुद्धिजीवियों को, चाहे वे किसी भी क्षुद्रमत से पहचाने जा रहे हों, रक्षात्मक पारदर्शी नीति का निर्धारण करने के लिए अपना उदार चिन्तन शुरु कर देना चाहिए। उन्हें ईश्वर के समान ही उदार भाव बना कर चलना चाहिए। उन्हें भगवान् की इस उक्ति का परिशीलन करना चाहिए कि–

न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किञ्चन।
नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि।।

यह उक्ति विश्व के उस मूल तत्त्व की है जिसने शून्य को गगन वायु ज्योति जल और अनन्त विशेषताओं वाली भूमि आदि रूपों में बदल कर हमको शरीर देकर भूमि पर उतारा है। उसे हमसे हमारे ही लिए बड़ी अपेक्षायें हैं, जब कि हम उसके दिये कुछ खिलौने पा कर नित्य निरपेक्ष बने बैठे हैं। वह कहता है कि कुछ भी बनाने या पाने की आवश्यकता न होने पर भी मैं कर्मों में सदा लगा ही रहता हूँ। सोचिये कि शरीर मन इन्द्रियों से रहित वह सनातन महान तत्त्व कौनसा कर्म कर रहा है, क्यों करता है, वह कैसे निरपेक्ष है जब कि सारे विश्व का भार ढो रहा है। उत्तर होगा

कि वह तत्त्व ऐसा ही है। उसके अधिकाधिक विशेषों पर ध्यान केन्द्रित करना होगा। उसे किसी मजहब में बँधा मान कर छोड़ना नहीं होगा। उसकी दया पर गौर करना होगा, उसका एक कण अपने में पाने की श्रद्धा संजोनी पड़ेगी। उसकी दया तो हमपर बहुत है, उसका अनुभव न होने से उसका लाभ हमें नहीं मिल रहा। अनुभव हो और लाभ मिले इसके लिए प्रयत्न होना चाहिए। लाभ से रिश्वतबाजी, लालफीताशाही, तानाशाही आदि विड़ाली नीतियों का त्याग स्वयं हो जायेगा और सत्कर्म (ईश्वराधन) की गंगा सारे विश्व में बहने लगेगी। इसके लिए विश्वव्यापी धर्म को संकीर्ण अज्ञानमय चिह्नों से जोड़ कर बिगाड़ते हुए स्वयं बिगड़ते जाने की मनःस्थिति छोड़नी होगी। न कोई मुसलमान है, न ईसाई, न कोई हिन्दू है, न जैन बौद्ध, न नास्तिक चार्वाक। कोई सिक्ख (शिष्य) भी नहीं है। यदि है भी तो आदि गुरु का, कृष्ण गोविन्द का, नरसिंह का।

सारा विश्व उस आदि गुरु का शिष्य है जिसने परमेष्ठी ब्रह्मा को विश्व रचना का प्रशिक्षण दिया जो तब से अबतक अपने आदि शिष्य का साथ निभा रहा है। शिष्य है कोई तो उस कृष्ण गोविन्द का जिसने विशाल गोवर्धन पर्वत को सजीव भगवान् बनाकर देवराज का ऐश्वर्यमद चूर चूर कर दिया और समझा दिया कि नकली ईश्वरों की इस दुनियाँ में खैरियत नहीं है। शिष्य उस नरसिंह का कोई हो सकता है जिसने स्वरूपबोधमय प्रकृष्ट ह्लाद (प्रह्लाद) के अन्दर परतत्त्व की विकसित भक्ति की रक्षा के लिए आसुरी शक्तियों के उस केन्द्र हिरण्यकशिपु (सोने पर सोने वाले) का पेट फाड़कर उसकी अन्तड़ियाँ उधेड़कर अपनी माला बना कर समझा दिया कि ईश्वरभक्ति की रक्षा के लिए वह शौर्य अपेक्षित होता है जिसके लिए आसुरी शक्तियों का मर्म या केन्द्रविन्दु फूल की माला से अधिक भारी नहीं पड़ता। हमें वह शौर्य प्राप्त करने के उपाय करने चाहिए जिससे सोने पर अनैतिकता की सीढ़ी से चढ़ कर सोने वालों की नींद ही हराम न हो बल्कि वे आखिरी नींद में रह जायें। अर्वाचीन उपाधियों से मानव का बंटना या बांटना धोखे की राह है, भलाई की नहीं। उपाधियों से यदि कोई कुछ है ही तो उक्त सारी उपाधियों और उनकी विशेषताओं का वह केन्द्रबिन्दु है जो सनातन और अत्यन्त निर्मल तत्त्व आत्मा है। हम अपने वास्तव रूप

को समझें। मानवता को अज्ञान से एक मानना और अज्ञान से बाँटना दोनों समान अपराध हैं।

विश्व के किसी भी कोने की, चााहे कितनी भी पुरानी हो, वह शिक्षा केवल पाप की शिक्षा है जो तत्त्व दर्शन से दूर रखे, संकीर्णता सिखलाये या गुड़ गोबर मिलाने की उदारता दे, हिंसावृत्ति बढ़ाये, इन्द्रियों की लालसा बढ़ाये, शुद्ध चेतन तत्त्व की सनातनता पर पर्दा रखे, अनादि कर्म प्रवाह को विस्मृति के पर्दे में रखकर ईश्वर को भी कर्मबद्ध जीवों के समान विषयभावनाग्रस्त और दयाहीन बनाकर रखे, एवं ईश्वरीय मिथ्या आस्था के भरोसे काम क्रोध की धारा में बहते हुए नाना अपराधों में लिप्त कर दे, साथ ही निरपराधों में अपराध दिखलाये और उन्हें गफलत की हालत में मारने के लिए खुद को भी मर जाने तक की सीख दे, एवं ऐसा कोई मजहब दिखलाये जिसका मूल आधार न तो कोई तत्त्वदर्शन हो न कोई योग साधना हो, न कोई तर्क प्रमाणमय ग्रन्थ हो। ऐसी शिक्षा यदि हजार दो हजार साल पुरानी भी हो तो वह पाप ही है। पुराना श्मशान भी प्रेतावास न होकर कोई देवभूमि नहीं बन जाता।

कहा तो जाता है कि सारे मानव एक ईश्वर की सन्तान होने से एक हैं, भेद भाव बेकार हैं। किन्तु यह कथन किसी उत्तम उद्देश्य के लिए नहीं देखा जाता। सबसे उत्तम उद्देश्य राष्ट्रहित है। उसके लिए ईश्वर को और उसके साथ अपने सम्बन्धों को और सम्बन्धों से बनने वाले राष्ट्रिय कर्तव्यों को एवं राष्ट्रविरोधी भावनाओं को समझा जाये, समझ के मुताविक दृढ़ता से चला जाये तो उत्तम हो। अन्यथा तो दम्भी नेताओं और नशे में चूर शराबियों की एकता नीति तुल्य ही होती है। अस्तु, उक्त चतुर्थवर्ग की उपलब्धि के लिए वर्तमान रिश्वती सड़ियल शिक्षातन्त्र का भरोसा छोड़कर राष्ट्रहित में एक ओजस्वी तेजस्वी उत्साह शौर्यसम्पन्न प्रशिक्षणात्मक शिक्षातन्त्र गठित करना होगा जिसमें हाईस्कूल के बाद आठ साल की प्रशिक्षणात्मक शिक्षा दी जायेगी। उसमें प्रज्ञा मेधा विशिष्ट नीरोग उत्साही राष्ट्रहित के योग्य छात्र लिये जायेंगे। प्रशिक्षण के बाद उन्हें राष्ट्रहित के कार्यों का दायित्व सौंपा जायेगा। भारत में कम से कम एक लाख प्रशिक्षित तैयार होने पर उनकी राष्ट्रिय उपयोगिता समझ में आने लगेगी, तब सरकार स्वयं उसे

सिरमाथे पर ले लेगी। ईंट पत्थरों में लग रहा धन यदि इधर लगे तो बहुत काम हो सकता है। प्रशिक्षण की रूपरेखा पीछे है।

अब हम ज्येष्ठता क्रम से ग्रीक चीन आदि देशों की संस्कृतियों का विशेष चिन्तन उक्त पन्द्रह पहलुओं से करते हुए उनमें राष्ट्रियता का अंश कैसा व कितना है यह विचार करेंगे।

(विश्व का परिचय रखने वाले मनीषी इस सन्दर्भ को स्वयं आगे बढ़ायें।)

कल्पित पाठ्य चौथी पुस्तक "विश्वमानव का इतिहास" की रूपरेखा

अतीत घटनाओं को इतिहास कहते हैं। भारत में बाल्मीकीय रामायण और महाभारत ये दो प्राचीन ग्रन्थ इतिहास माने जाते हैं। इनसे धर्म कर्तव्य और नीति का बोध होता है। इनमें सामयिक और अतीत बहुत सी कथाओं का संग्रह है। उपयोगिता प्रदर्शित करते हुए उन कथाओं का संक्षिप्त बोध देश के छात्रों को कराना चाहिए। दो सौ २०० पृष्ठों में इनका समावेश हो सकता है।

अतीत की बहुत सी घटनायें कल्पित सी लगती हैं, कुछ सम्भव भी लगती हैं किन्तु समय बीत जाने से सारी ही कल्पित दर्जे में रह जाती हैं। अतीत पुरुषों पर रागद्वेष नहीं होते। उनके समान भावनायें समाज में न्यूनाधिक रहती है। उन घटनाओं से वर्तमान में लेने योग्य प्रेरणायें प्रस्तुत हों। सौ १०० पृष्ठों में यह सन्दर्भ हो सकता है।

इतिहास की जानकारी से हम वैसी भावना वालों के प्रति अपने भी स्वपर जैसे भाव बनाते और अपने कर्तव्य का निर्धारण करते हैं। हर एक सक्षम व्यक्ति का समाज के प्रति दायित्व होता है। वह दायित्व ही भारतीय भाषा में वर्णाश्रम धर्म कहा जाता है। संगठित मानव समाज पर अपना शुभ-अशुभ प्रभाव डालता है। शुभ न होने पर अशुभ और विनाश हावी होता है। समाज के शुभ की रक्षा और विकास के लिए प्रयत्न होने चाहिए। अतीत के दर्पण में देखकर बनायी गयी रक्षात्मक नीति हमारे प्रयत्नों में फल लाती है। अतः वैदिक पौराणिक पुराने और आधुनिक समग्र इतिहास पर हमारी व्यापक दृष्टि होनी चाहिए। पाठ्य इतिहास ग्रन्थों की रचना ऐसी हो जिससे इतिहास पर व्यापक दृष्टि बनाने की श्रद्धा हो, साथ ही ठोस व्यापक रक्षात्मक सांस्कृतिक राष्ट्रिय नीति पर छात्रों की आस्था हो।

ऐतिहासिक आधारों पर राष्ट्रिय कर्तव्यों के संकेत दिये जायें। यह सन्दर्भ १०० पृष्ठों में आ सकता है।

कल्पित पाठ्य पाँचवी पुस्तक ''शासनतन्त्र का आदर्श और उसका व्यावहारिक रूप'' की रूपरेखा

''शासनतन्त्र का आदर्श और उसका व्यावहारिक रूप के निर्माण के लिए कुछ निर्देश–

शासनतन्त्र भी वैदिक विषय होने से अनादि है और उसका कोई आदर्शरूप श्रुति स्मृतिग्रन्थों में विखरा मिल रहा है। धर्मशास्त्र श्रुतियों के समान अनादि माने जाते हैं। उनका समग्र अनुपालन न होकर देश काल परिस्थिति के अनुरूप आंशिक ही हो पाता है। शासन तन्त्र कैसा हो इस पर मनु याज्ञवल्क्य आदि ने बहुत कुछ निर्देश दिये हैं, उनके आधार पर अर्वाचीन भी बहुत से निबन्ध भारत के ग्रन्थागारों में हैं। काशी के प्रसिद्ध विद्वान् विश्वनाथ शास्त्री दातार के द्वारा लिखित ''भारतीय पाश्चात्य राजनीत्योः समालोचनम्'' नामक सहस्रपृष्ठात्मक निबन्ध इस विषय पर बहुत कुछ सहायक है। ''कौटिलीय अर्थशास्त्र'' शासनतन्त्र पर समग्र चिन्तन है। हिन्दी में अर्थशास्त्र के नाम से हम जो जानते हैं वह उसमें नहीं है। भारतीय शासनतन्त्र की रूपरेखा भारत के प्राचीन ठोस ग्रन्थों के आधार पर बननी चाहिए। यह ठीक है कि प्रजा की वर्तमान मानसिकता का अनादर न हो किन्तु प्राचीन अच्छाइयों को कम से कम देवमूर्तियों की तरह सामने रखकर हम अभिवादन भी करते रहे तो आदर्श से जुटे रहेंगें हमारा नैतिकस्तर रसातल तक पहुँच चुका है यह हमारे शासनतन्त्र की ही बड़ी त्रुटि है। अनैतिकता ही हमें प्यारी लगती है इससे इसमें हम सुधार नहीं सोचते। आतंकियों के बहुमुख प्रहारों से अब हमें चेत जाना चाहिए।

हमारा शासनतन्त्र समग्र और आदर्श होना चाहिए। धर्म का त्याग

होने से असमग्र वह आदर्श भी नहीं रह गया है। जब हम धर्म की बात करते हैं तो ईसाई, मुसलमानों को आपत्ति होती है, वे सामान्यतया हमारे भारतीय धर्म के विरोध में ही अपने कल्पित धर्म को खड़ा मानते हैं। अब हम भी उनके ही समान सोचने लगे हैं, यह हमारा घातक आलस्य है, इसका त्याग करना होगा। ईसाई मुसलमानों का कोई स्वतन्त्र धर्म नहीं है। उनके यहाँ जो भी कुछ अच्छा है वह हमारा है। यदि उनके यहाँ हमारे विरुद्ध कुछ है तो या तो हम गलत है या वे गलती में हैं। गलती की गफलत मिल बैठ कर जल्दी दूर कर लेनी चाहिए। क्योंकि अनचाहे भी साथ ही रहना है। हमने स्वयम् अपने धर्म को कम नहीं बिगाड़ा है, अभी और भी बिगाड़ते जा रहे हैं, विकृति को ही धर्म मानना घातक है। जब स्वयं प्रमाद में हैं तो दूसरों को क्या समझ और समझा पायेंगे।

संस्कृति के बिना शासन तन्त्र का अस्तित्व नहीं होता। मुसलमानों ने भारत में अपने समय में जो शासन चलाया था वह आज नहीं है। उसमें उनकी थोड़ी सी संस्कृति की। भारतीय मुसलमान अपने घरों में उसे सम्हाले होंगे। यदि वह भारतीय कल्याणमयी संस्कृति के विरुद्ध है तो वह विशेष रूप से विचारणीय है। इस सन्दर्भ में यह ध्यान में रखना चाहिए कि भारतीय आदर्शों के विपरीत भावना वालों की बड़ी तादाद भारत में बहुत पहले से ही रही है। आज अन्तर यह आ गया है कि हम अपसंस्कृति को भी संस्कृति का दर्जा देने लगे हैं। भारतीय प्राचीन शासनतन्त्रनिर्माणविधियों का वर्तमान परिप्रेक्ष्य में उपयोग समझना आवश्यक है। राष्ट्रियशासनतन्त्र में कुछ जोड़-तोड़ के बिना प्रजा की रक्षा शायद असम्भव है। कुछ परिस्थितिवश आदर्शों की उपेक्षा होती है किन्तु ध्यान में तो आदर्शों को रहना ही चाहिए जिससे हम आदर्शोन्मुख रहें। आदर्श से कुछ नीचे चलने की बाध्यता ही व्यावहारिकता है।

भारत की खानों से बहुत से रत्न मिलते हैं, उन्हें अभी भी विदेशी लोग चुराकर ले जाते हैं और परिष्कृत करके हमारे ही यहाँ ऊँचे मूल्यों पर बेचते हैं। ऐसी बहुत सी वस्तुएँ हमारे यहाँ से दूसरे लोग ले जाते हैं और कुछ बना बिगाड़ कर हमारे ही हाथों बेचते हैं। विदेशी मादक द्रव्य प्रचुर मात्रा में हमारे यहाँ हमारे ही लोगों के द्वारा बेचे जाते हैं और हम भारतीय

उनका सेवन कर नशे में अर्धमृत होकर अपने पुरुषार्थों से वञ्चित रहते हैं। ऐसी भी बहुत सी बातें हैं जो विदेशों से हमारे देश में संस्कृति के रूप में अपनायी जाती है जो वास्तव में हमारी कल्पनामयी संस्कृति का विनाश करती हैं। हममें वर्णसंकरता ला कर हमारी राष्ट्रशक्ति को कमजोर करती हैं। वर्णसंकर प्रजा अच्छा शासन नहीं चला पाती। शुद्ध क्षत्रियों की कमी से ही देश पराजित हुआ और उनकी कमी ही अभी भी स्वावलम्बन को दूर रख रही है। सत्प्रज्ञानुगत पौरुष ही क्षत्रियत्व है। वह जिस किसी जन्तु को नहीं मिलता। शुद्ध रक्त को मिलता है। वह जिसमें होता है वही शुद्ध क्षत्रिय होता है। वह परमात्मा की आदर्श जंगम मूर्ति होता है। प्रणाम और पूजा उसे ही प्राप्त होनी चाहिए। इसी से हम राम की पूजा करते हैं। हमारे राम शुद्ध क्षत्रिय थे, इसी से वे हमारे आदर्श थे, पूज्य थे। वे यदि ईश्वर के अवतार न भी रहे हों तो भी आदर्श महामानव थे। उनका अनुगमन आज भी सारे विश्व के लिए अति आवश्यक है। इसी से भारत से बाहर के बहुत से देश रामायण का सम्मान करते हैं। इस तथ्य का सहन म्लेच्छ नहीं कर सकता। जो सहन न कर पा रहा हो वही म्लेच्छ है। आदर्श आहार आचार-विचार जिसके न हों, जो तात्त्विक वचन भी न बोल पाये वह म्लेच्छ है। वह शासनतन्त्र में ठोसपना सह नहीं सकता। वह सदा ही दोषों और दुर्गुणों का द्वार खुला रखकर विनाश का आवाहन करता रहता है।

शासनतन्त्र का उत्कर्ष प्रजा के उत्कर्ष पर निर्भर करता है। उत्तम संस्कारों से प्रजा में उत्कर्ष आता है। शिक्षा सबसे अच्छा संस्कार होता है। वह आजकल कृपांक, आरक्षण, नकल, फर्जी प्रमाणपत्र और रिश्वतबाजी से मूर्च्छित हो चुका है। इस स्थूल तथ्यपर पिछले सौ वर्षों से भारतीयों का समुचित ध्यान नहीं जा रहा है। अंग्रेजी शासन के समय से ही परीक्षाओं में नकल और गलत नियुक्तियाँ चल पड़ी थीं। लोभ के वशीभूत लोगों ने शुरु में इस दोष को राष्ट्रघाती नहीं समझा और आज तो हम समझ ही नहीं पायेंगे, क्योंकि बिना नकल के परीक्षापास हुए लोग शायद सब मर गये हैं, अब कोई नकलची अक्कल क्यों चाहे। हमारा शासनतन्त्र अच्छा होता तो देश में शिक्षा अच्छी होती या कमसे कम उसका स्तर बना रहता।

संस्कृतप्रधान शिक्षा ही अच्छी शिक्षा होती है। संस्कृत व्याकरण ही विश्व की सभी भाषाओं के विश्लेषण पूर्वक बोध में सहायक होता है। संस्कृत का प्रौढ पण्डित ही किसी भी अन्य भाषा की सही जानकारी पा सकता है। प्रकृतिप्रत्ययार्थ सम्बन्धों और शाब्दबोध की शुद्धि अन्यत्र दुर्लभ है। संस्कृत भाषा अपने निसर्ग से ही एक उत्तम संस्कार देती है। इसलिए कि वह संस्कारयुक्त होती है। वह अर्थों के ऐसे रूप प्रस्तुत करती है जैसे अन्य भाषाओं को दुर्लभ हैं। इसी से महाकवि कालिदास ने कहा है कि-''संस्कारवत्येव गिरा मनीषी, तथा स पूतश्च विभूषितश्च'' (एक मनीषी संस्कृत भाषा से शुद्धि और शोभा दोनों पाता है)।

आज की नकलची परीक्षाओं वाली शिक्षा ने गवाँरों को एम. ए. पी. एच.डी. और क्या-क्या बना कर धन ऐंठने वालों की सेना तैयार कर रखी है जहाँ विवेक और विज्ञान ढूँढ़े नहीं मिलता। शासन तन्त्र के दोष से ही प्रजा में सारे दोष आते हैं। इसमें सुधार ला कर ही प्रजा में अच्छे संस्कार लाये जा सकते हैं। उससे देश में आदर्श प्रजा की सृष्टि द्वारा भारत को उत्तम राष्ट्र बना सकते हैं।

शासनतन्त्र का मुख होती है न्यायपालिका। इसकी अच्छाई शासन की ही अच्छाई होती है। इसमें आज अनेक दोष प्रकट हैं। कोई भी केस बहुत लम्बा खिंचता है, जीत हार का कोई अर्थ नहीं रह जाता। वकीलों के कथनानुसार ३०, ४० प्रतिशत केस रिश्वत पर निपटते हैं। रिश्वत का धान कितना ऊपर उठता है यह ऊपर वाले ही जानते होंगे। बहुत से फैसले अपराध बढ़ने के भय से दबाये जाते हैं इससे अन्याय पक्ष का उत्साह बढ़ा रहता है, अपराध बढ़ते हैं। वह देश कभी प्रगति नहीं कर सकता जहाँ अन्याय का ही दबदबा ज्यादा हो। शासनतन्त्र का एक ऐसा भी विभाग होना चाहिए जो अपराधों की सम्भावना को ही रोकता रहे। घटित अपराधा छिपाये न जायें, उनपर अविलम्ब सही निर्णय हुआ करे। यह सब संविधान की चुस्ती से ही सम्भव है। सारे दोषों की जड़ है अनैतिकता, जो धर्मनिरपेक्षता की लाड़िली हैं। राष्ट्रिय दोषों की अवस्था और उनमें सुधार के उपायों पर सामान्य रूप से सारे छात्रों का ध्यान हो ऐसी शिक्षा होनी चाहिए। अच्छे स्नातक ही शासन में अच्छे प्रत्याशी देते या बनते हैं। तभी

अच्छे मन्त्री होते हैं। तभी देश का वास्तव कल्याण होता है।

आज पूरे देश में आतंक का राज है जिसे शासन बड़ी देर से अनदेखा किये हैं। किन्तु नतीजा बहुत बुरा होने जा रहा है। राष्ट्रिय निष्ठावान् नागरिकों का बाहुल्य होना चाहिए, अन्यथा छिन रही हमारी स्वतन्त्रता कुत्ते छीन ले जायेंगे। संविधान को पूरा करना होगा, न्यायपालिका को सशक्त और अधिक सम्मानित बनाना होगा, तभी शासन भी शुद्ध और शसक्त रहेगा। सुधार चाहने से सब कुछ सूझता है, आलसी, बेईमान उलटा ही सोचते हैं। सोचकी दिशा सीधी हो।

राष्ट्रिय प्रशिक्षण में अपेक्षित नये ग्रन्थों की सूची

१- सृष्टि सम्बन्धी विभिन्न पाश्चात्य दृष्टियाँ (दूसरे वर्ष में)
२- भारतवर्ष का राजनीतिक इतिहास (दूसरे वर्ष में)
३- भारतीय राजनीति (प्राचीन आर्ष ग्रन्थों के अनुसार) (दूसरे वर्ष में)
४- मनुस्मृति द्वितीय अध्याय (विज्ञान सम्मत विशद हिन्दी व्याख्या सहित) (तीसरे वर्ष में)
५- सृष्टि सम्बन्धी वैज्ञानिक और वैदिक मान्यताओं में समन्वय (तीसरे वर्ष में)
६- विश्व का अनादि सांस्कृतिक इतिहास (तीसरे वर्ष में)
७- सृष्टिप्रक्रियाः एक समञ्जस आर्ष दृष्टि (चौथे वर्ष में)
८- विश्व में सांस्कृतिक परिवर्तनों के रहस्य और परिणाम (चौथे वर्ष में)
९- पुराण और बाइबिल का सामान्य परिचय (पाँचवें वर्ष में)
१०- विश्व का राजनीतिक इतिहास (पाँचवें वर्ष में)
११- अरबी भाषा का सामान्य ज्ञान : ऐतिहासिक दृष्टि से (पाँचवें वर्ष में)
१२- ऋग्वेद में ईश्वर से सम्बन्धों के नाते चेतन के कर्तव्य (छठे सातवें वर्षों में)
१३- कुरान और बाइबल (तुलनात्मक और समीक्षात्मक एक प्रामाणिक परिचय) (छठे वर्ष में)

१४- विश्व का औद्योगिक इतिहास (छठे वर्ष में)

१५- अरबी भाषा : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन (छठे वर्ष में)

१६- जैन बौद्ध दर्शन और साधनायें (एक सामान्य परिचय) (सातवें वर्ष में)

१७- विश्व के साथ भारत के प्राचीन सम्बन्ध (सातवें वर्ष में) (राजनीतिक, वाणिज्यिक और सांस्कृतिक) (वेदादि प्राचीन ग्रन्थों के आधार पर)

१८- विश्वभाषापरिशीलन (सातवें वर्ष में) (विश्व भाषा परिवार के जन्म और विकास का प्रामाणिक क्रम)

१९- वैदिक अवैदिक दर्शनों के साधर्म्य वैधर्म्य (आठवें वर्ष में)

२०- असंस्कृत देशी विदेशी भाषा में और संस्कृत (आठवें वर्ष में)

राष्ट्रियता से सम्बन्धित छः ग्रन्थ-

१- विश्वमानव का इतिहास। (प्रथम वर्ष में) आर्षदृष्टि और पुरातत्त्वों की उपलब्धियों का सामञ्जस्य रखते हुए

२- विश्व मानव का इतिहास।। (दूसरे वर्ष में)

३- भूमि की पहचान (तीसरे वर्ष में) निर्दिष्ट विवरणों के अनुसार

४- मानव और अमानव (चौथे वर्ष) दोनों के सम्बन्ध और हानि लाभ। निर्दिष्ट विवरणों के अनुसार

५- मानव की संस्कृति (पाँचवे वर्ष में) निर्दिष्ट क्रम के अनुसार

६- शासनतन्त्र के आदर्श और व्यावहारिक रूप (छठे वर्ष) निर्दिष्ट संकेतों के अनुरूप